1

कहाँ, कब और कैसे

कहाँ, कब और कैसे?

बिहार दिवस के अवसर पर राखी और आयुष पटना के गाँधी मैदान में आए। मैदान में मेले जैसा माहौल था। विभिन्न पण्डालों में अलग–अलग गतिविधियाँ चल रही थीं। घूमते–घूमते वे लोग ऐसे पण्डाल में पहुँचे जहाँ क्विज प्रतियोगिता हो रही थी। एक प्रश्न था–पटना का प्राचीन नाम क्या था। राखी तेजी से मंच की ओर बढ़ी, माइक अपने हाथ में लिया और जोर से बोली–पाटलिपुत्र। तालियों की आवाज के साथ राखी को पुरस्कार मिला। राखी का छोटा भाई आयुष सोचने लगा कि कोई स्थान या नाम समय के साथ कहाँ, कब और कैसे परिवर्तित हो जाता है?

आपने कक्षा छह (अतीत से वर्तमान भाग–1) में हर्षवर्द्धन के शासनकाल तक पढ़ा था। अब हम इस कक्षा में हर्षवर्द्धन के शासनकाल के बाद के समय को समझने का प्रयास करेंगे। आप देखेंगे कि हर्ष के पहले के भारत और बाद के भारत में कौन–कौन से परिवर्तन आए। समय के साथ–साथ हमारे समाज में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन कभी शब्दों के अर्थ, कभी स्थानों के नाम, कभी भौगोलिक सीमाओं एवं जीवन शैली के सन्दर्भ में होते रहते हैं।

समय के साथ व्यक्तियों के खान–पान, वेश–भूषा, पहनावा, रीति रिवाज आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। आप अपने ही देश के किसी दूसरे राज्य में जायेंगे तो वहाँ के खान–पान, पहनावा आदि में अंतर देखने को मिलेगा। जब आप को भी उनके साथ कुछ दिनों तक रहने का मौका मिलेगा तो सम्भव है कि आपकी जीवन शैली में भी

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

परिवर्तन दिखने लगे।

आगे की चर्चा में हम मोटे तौर पर 750 से 1750 ई० (आठवीं शताब्दी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के मध्य) तक लगभग एक हजार वर्ष में होने वाले परिवर्त्तनों को समझने का प्रयास करेंगे।

आज हम अपने देश के लिए 'हिन्दुस्तान' नाम का प्रयोग भारत और इण्डिया के पर्यायवाची के रूप में करते हैं। क्या आप जानते हैं कि यह नाम तेरहवीं शताब्दी में तुर्क सत्ता की स्थापना (तुर्कों की चर्चा विस्तृत रुप से इकाई तीन में की गई है) के बाद प्रचलित हुआ।

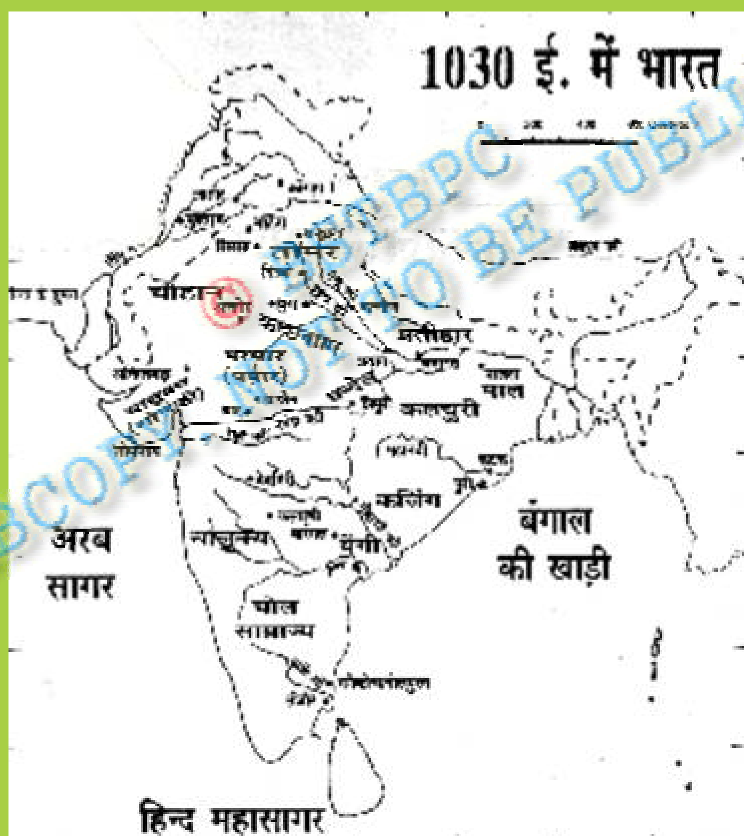

मानचित्र 1

WEBCOPY: SSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

मानचित्र 2

© BSTBPC
WEBCOPY. NOT TO BE PUBLISHED

समय हिन्दुस्तान की भौगोलिक सीमा उन क्षेत्रों पर आधारित थी जो तुर्क सत्ता के अधीन थे। लगभग तीन शताब्दी बाद मुगल वंश के संस्थापक बाबर ने हिन्दुस्तान शब्द का प्रयोग वस्तुतः सम्पूर्ण उपमहाद्वीप के लिए किया। यद्यपि इस क्षेत्र में मुगल सत्ता का सर्वाधिक विस्तार 17वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बाबर के वंशज औरंगजेब के समय में हुआ।

इसी प्रकार हमारा राज्य 'बिहार' के नाम से जाना जाता है इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के एक इतिहासकार मिन्हाज–ए–सिराज ने किया। बौद्ध

विहारों की इस भूमि को 'अर्ज–ए बिहार' का नाम दिया और मुगल काल (मुगल काल की चर्चा इकाई–4 में विस्तृत रूप से करेंगे) में अकबर ने इसे प्रान्त के रूप मे गठित किया।

मानचित्र 1 के आठ प्रमुख राज्यों की सूची बनाएँ।

मानचित्र 2 करीब 700 सालों के बाद (सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में) औरंगजेब के विशाल साम्राज्य दिखाता है। (इसके भी प्रमुख राज्यों की सूची बनाएँ)

दोनों मानचित्रों का अवलोकन करने पर आप क्या अन्तर पाते हैं, चर्चा करें।

मानव जीवन को बेहतर और उन्नत बनाने के लिए विज्ञान के सिद्धान्त पर आविष्कृत विभिन्न कल पूर्जों और मशीनों का व्यवहारिक प्रयोग (खेती, कल–कारखाने आदि) प्रौद्योगिकी कहलाता है।

मध्ययुगीन भारत का आर्थिक जीवन मुख्यतः कृषि पर आधारित था। कृषि के साथ–साथ छोटे स्तर पर भी अन्य आर्थिक गतिविधियों के संकेत मिलते है। इससे वाणिज्य व्यापार और शहरी–जीवन की रफ्तार धीरे–धीरे बढ़ने लगी। इसमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास की भूमिका महत्वपूर्ण थी। उत्पादन के क्षेत्र में आए तकनीकी परिवर्तनों के फलस्वरुप नगरों के विकास एवं उनकी संख्या मे वृद्धि हो रही थी। लोगों के रहन–सहन और विचारधारा में परिवर्तन के कारण भारत के साथ–साथ पूरी दुनिया की प्रौद्योगिकी में बदलाव हो रहे थे। आइये अब हम विभिन्न क्षेत्रों के प्रौद्योगिकी में हुए परिवर्त्तनों पर एक नजर डालें।

आज सिंचाई के लिए किन–किन साधनों का इस्तेमाल किया जाता है ? अपने शिक्षक से उनपर चर्चा करें।

जैसा कि आप जानते हैं कि प्राचीन समय से ही खेती लोगों की आय का प्रमुख साधन रहा है। पहले खेतों की कोड़ाई के लिए कुदाल या फावड़ा का इस्तेमाल होता था। बाद में हल का इस्तेमाल होने लगा।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

खेतों की सिंचाई हेतु जल प्राप्त करने के कई साधन थे। वर्षा के जल को भी तालाबों और कुण्डों में इकट्ठा कर सिंचाई की जाती थी। कुँओं से भी सिंचाई होती थी। कुँओं से पानी को बाहर निकालने के लिए कई तकनीक/यंत्र प्रचलित थे। पानी को बाहर निकालने के लिए अरघट्ट या घटी यंत्र का इस्तेमाल प्राचीन समय से ही होता था। बाद में रहट का इस्तेमाल होने लगा। रहट में जंजीर लगी होती है जो पानी को गहराई से निकाल पाना संभव बनाती है। वहीं दाँतेदार पहिए इसे पशु–शक्ति के उपयोग और जंजीर की गति को ठीक तरह से नियन्त्रित करने में सक्षम बनाते हैं (चित्र–1) आज भी कई गाँवों में कहीं–कहीं सिंचाई के लिए रहट का प्रयोग आप आसानी से देख सकते हैं।

चित्र 1 – रहट

चित्र 2 – धुनिया

प्राचीन भारत में वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में धागों की कताई के लिए केवल हाथ से चलने वाले पहिए और तकली का प्रयोग होता था। बाद में 13वीं शताब्दी के आस–पास इस क्षेत्र में चरखे का प्रयोग होने लगा। धुनिया की कमान (धुनकी) भी संभवतः इसी समय भारत में आई। जहाँ

चित्र 3 – चरखा

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

तकली से सूत कातने में बहुत समय लगता था वहीं चरखे से सूत कातने की गति काफी बढ़ गई। जैसे–जैसे चरखे और धुनकी का प्रसार होता गया सूती कपड़े की गुणवत्ता एवं उत्पादन में वृद्धि हुई।

जैसा कि आपने कक्षा छह में पढ़ा था कि लेखन के क्षेत्र में हमारे देश के लोग ताड़ के पत्तों का अधिकतर प्रयोग करते थे। परन्तु मध्य युग में, तुर्कों के आगमन के साथ लेखन में कागज का व्यापक उपयोग होने लगा। सबसे पहले कागज 100 ई॰ के आस–पास चीन में बनाया गया था। अपने देश में कागज का प्रयोग 13वीं शताब्दी के आस–पास हुआ। इससे ज्ञान और शिक्षा के प्रसार में काफी वृद्धि हुई। व्यापारिक लेन–देन में भी काफी सुविधा हुई। उस काल की रचनाएँ आज भी पांडुलिपियों के रूप में सुरक्षित हैं।

तेरहवीं शताब्दी के आस–पास विज्ञान के क्षेत्र में समुद्री जहाजों पर चुंबकीय कुतुबनुमा (दिशासूचक यंत्र) का प्रयोग हुआ। इस नवीन आविष्कार का समुद्री व्यापार पर अच्छा प्रभाव पड़ा और समुद्र में यात्रा करने में सुविधा हुई। दूसरा प्रमुख आविष्कार था समय सूचक उपकरणों का प्रयोग। चौदहवीं शताब्दी में सुल्तान फिरोज शाह ने (इकाई–3 में इसके बारे में आप विस्तृत रूप में पढ़ेंगे) ने फिरोजाबाद (दिल्ली) में एक मीनार पर अनेक नक्षत्र घड़ियाँ, एक धूप घड़ी और एक जल घड़ी भी लगवाई थी जिससे समय की सही सूचना दी जाती थी।

युद्ध के क्षेत्र में घुड़सवार सैनिकों की सुविधा के लिए दो महत्वपूर्ण आविष्कार इसी समय हुए। पहला आविष्कार था लोहे की रकाब, जिससे सैनिकों को घोड़े पर जम कर बैठने में सुविधा प्राप्त हुई। इसके उपयोग से युद्ध क्षेत्र में आक्रमण का तरीका और अधिक कारगर हो गया। दूसरा आविष्कार था लोहे का नाल जो घोड़े के खुर में लगायी जाती थी। नाल लगाने के दो लाभ थे – पहला इससे नरम जमीन पर घोड़े के पैर को अच्छी पकड़ प्राप्त होती थी और दूसरा खुरदरे कठोर धरातल पर खुर सुरक्षित रहते थे। भारत में इन दोनों आविष्कारों का प्रचलन नवीं शताब्दी के बाद से हुआ जिसके फलस्वरूप युद्धनीति में काफी परिवर्तन हुये। परंतु इसका व्यापक प्रयोग तुर्कों क आगमन के बाद ही संभव हुआ।

©BSTBPC WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

नयी प्रौद्योगिकी एवं विचारधारा लाने में भारत के बाहर से आए लोगों का भी बहुत बड़ा योगदान है। जैसा कि आप जानते हैं प्राचीन समय से ही इस उपमहाद्वीप के लोग व्यापार करने दूसरे देशों में जाते थे। ठीक इसी प्रकार इन देशों से भी लोग व्यापार करने भारत आते थे। ऐसे ही एक व्यापारियों का समूह अरब प्रायद्वीप से भारत के पश्चिमी तट से होकर भारत आया। धीरे–धीरे इनमें से कुछ व्यापारियों ने यहाँ रहना प्रारम्भ किया। अरब लोगों ने आठवीं शताब्दी में सिंध पर अपना शासन भी स्थापित कर लिया। इन्हीं अरबों के साथ भारत में एक नये धर्म 'इस्लाम' का आगमन हुआ। इस्लाम धर्म में लोग यह मानते हैं कि एक ही ईश्वर है–अल्लाह। हजरत मोहम्मद अल्लाह का पैगाम यानी संदेश लाने वाले पैगम्बर हैं। इस्लाम धर्म के अनुयायी मुसलमान कहलाते हैं। मुसलमान कुरानशरीफ को अपना धर्म ग्रंथ और पथ प्रदर्शक मानते हैं।

अरब लोग अपने साथ अपने यहाँ की रीति–रिवाज, पहनावा और पकवान लेकर भी आए। इनके प्रमुख पकवानों में पुलाआव, बिरयानी, कोरमा, फिरनी आदि प्रमुख हैं।, कालांतर में ऐसे ही नए प्रभाव तुर्क, अफगान और मुगल भारत में ले कर आए।

- मध्यकाल के कौन–कौन से खाद्य पदार्थ हम आज भी खाते हैं?
- उस दौर में आम लोग क्या पहनते होंगे?

अरबों का प्रभाव भारत के सीमावर्ती एवं तटीय क्षेत्रों तक सीमित रहा। इस संपर्क से ज्ञान–विज्ञान और वैचारिक स्तर पर सीमित आदान–प्रदान हुआ। कालांतर में तुर्क, अफग़ान, ईरानी और मुग़लों ने इस देश में प्रवेश किया और भारत में स्थाई राज्यों की स्थापना की। इनके आने से सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में ज्यादा व्यापक और दुर्गामी प्रभाव पड़े। इनसे हमारी भाषा,

क्या कारण रहा होगा कि भारत अतीत से ही संसार के लोंगो के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा ?

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

रहन–सहन, पोशाक, रीति–रिवाज आदि प्रभावित हुए और उनमें एक मिली–जुली परंपरा का विकास हुआ। इसे ही 'गंगा–जमुनी' संस्कृतिक कहते हैं। इसके बारे में विस्तृत रूप से आप आगे की इकाइयों में पढ़ेंगे।

क्या आपको अपने गाँव में 'गंगा–जमुनी' संस्कृति की झलक देखने को मिलती है ?

प्रसिद्ध विद्वान सैयद सुलेमान नदवी ने भारत में बस गए अरब के एक कवि अबू जिलअ सिंधि के एक अरबी गीत का उद्धरण दिया है, जिसमें वह भारत की दिल खोलकर प्रशंसा करता है।

"मेरे मित्रों ने नहीं माना और ऐसी अवस्था में यह बात ठीक नहीं थी, जबकि भारत की और युद्ध में भारत के तीर की प्रशंसा हो रही थी।"

"अपने प्राणों की सौगंध, यह वह भूमि है जब इसमें पानी बरसता है तब उससे उन लोगों के लिए दूध, मोती और लाल उगते हैं, जो श्रृंगार से रहित है।

"इसकी मुख्य चीजों में कस्तूरी, कपूर, अम्बर, अगर और अनेक प्रकार के सुगंधित पदार्थ उन लोगों के लिए हैं जो मैले हों।" "और भाँति–भाँति के इत्र, जायफल, सम्बुल, हाथी दाँत, सागौन की लकड़ी और चंदन है. और यहाँ के बब्बर शेर, चीते, हाथी तथा हाथी के बच्चे होते हैं।" ''यहाँ के पक्षियों में कुलंग, तोते, मोर और कबूतर हैं। वृक्षों में यहाँ नारियल, आबनूस और काली मिर्च के पेड़ हैं।"

"और हथियारों में तलवारें हैं, जिनको कभी सिकली की आवश्यकता नहीं होती, यहाँ ऐसे भाले हैं जब वे हिले तो उनसे सेना की सेना हिल जाए। "तो क्या मूर्ख के सिवा कोई और भी ऐसा है जो भारत के इन गुणों को अस्वीकार कर सकता है।"

WEBCOPY BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

इस समय स्थानीय धर्म में भी काफी बदलाव आया। इस देश के बहुत सारे लोग हिन्दू धर्म को मानते हैं। हिन्दू धर्म माननेवाले लोग बहुत सारे देवी–देवताओं की पूजा

करते हैं। उन्हें कई तरीकों से पूजते हैं। कभी–कभी अग्निकुण्ड में होम (हवन) भी करते थे, जिसे यज्ञ कहा जाता था।

> भक्ति संतों के वैसे दोहों पर चर्चा करें जिसे आपने हिन्दी की पुस्तक में पढ़ा है।

मध्ययुग में हिन्दू धर्म में भी कई बदलाव देखने को मिले। यूँ तो भारत में हर जगह हिन्दू धर्म मानने वाले लोग प्रायः शिव, विष्णु, राम और कृष्ण जैसे देवताओं को मानते हैं। लेकिन इस काल में तांत्रिक विचारधारा शैवमत की एक शाखा के रूप में उभरा इसमें कपाल (खोपड़ी) धारण करना तथा कपाल में ही भोजन ग्रहण करते थे।

> हिन्दू–धर्म में देवी देवताओं के प्रति आस्था व्यक्त करने की अलग–अलग तरीके या पद्धतियाँ सम्प्रदाय कहलाती हैं।

जैसा कि आपको याद होगा कि गुप्त काल में वैष्णव सम्प्रदाय लगभग पूरे भारत में फैल चुका था। अपनी उदारवादी प्रवृत्ति तथा विष्णु के अवतार के रूप में लौकिक देवताओं की उपासना के कारण यह सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय हुआ। इसमें कृष्ण की रासलीला का बड़ा महत्व है।

गुप्त काल में मातृदेवी की उपासना पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। पार्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, श्री काली आदि अनेक रूपों में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। सातवीं शताब्दी से इस उपासना में तंत्र–मंत्र का विकास बड़े पैमाने पर हुआ। तांत्रिक मंत्र के अन्तर्गत ध्यान योग (पूजा) तथा चर्या (अनेक प्रकार के आचार) की व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त इस काल में समाज में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। राजाओं द्वारा बड़े–बड़े मंदिरों के निर्माण में रूचि बढ़ने लगी। दक्षिण भारत के चोल शासक अपने भव्य मंदिरों के निर्माण के लिए जाने जाते हैं। (इसके बारे में आप इकाई–2 में पढ़ेंगे)।

> वैसी वस्तुओं की सूची बनाएँ, जिसे हवन में डाला जाता है।

इस युग में एक महत्वूपर्ण परिवर्तन भक्ति की अवधारणा के रूप में हुई। भारत में इस विचारधारा के कई सन्त हुए, जिनका नाम हमलोग आज भी सुनते हैं। कबीर, रैदास, नानक, रामानंद आदि प्रसिद्ध सन्त कवि थे। इनके

BSTBPC WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

दोहे आज भी आप आम आदमी द्वारा सुनते होंगे एवं हिन्दी की पुस्तकों में पढ़ते होंगे। इनलोगों ने इस बात को समझाने का प्रयास किया कि बिना किसी कर्मकाण्ड (बाह्य दिखावा) के प्रेम, भाईचारा एवं भक्ति के द्वारा भगवान के करीब पहुँचा जा सकता है। इन भक्त संतों की तरह कई मुसलमान संत भी थे जो सूफी संत कहलाए। सूफियों ने इस बात पर जोर दिया कि सच्चे दिल से अल्लाह को प्रेम करना, धन–दौलत व पद सब त्याग कर गरीबों और लाचारों की सेवा करना ही धर्म है। बिहार के प्रसिद्ध हिन्दी भक्त कवियों में दरिया साहब का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका जन्म शाहाबाद जिले के एक मुस्लिम परिवार में हुआ था। पटना जिले के मनेर के प्रसिद्ध हजरत शरफुद्दीन अहमद प्रमुख सूफी संत थे (इनके बारे में विशेष रूप से आप इकाई सात में पढ़ेंगे।)

नये सामाजिक और राजनीतिक समूह का उदय :–

अभी आपने देखा कि मध्य काल में जीवन के विविध क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तनों ने लोगों के सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित किया। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर कई समुदाय अस्तित्व में आए। इसी काल में राजपूतों ने भारतीय इतिहास में एक नई शक्ति के रूप में पर्दापण किया। राजपूत कौन थे और कहाँ से आये इसपर इतिहासकार एक मत नहीं हैं। राजपूत शब्द के अन्तर्गत केवल राजा और सामंत ही नहीं बल्कि सेनापति और सैनिक भी आते थे। एक अन्य समुदाय कवि और चारण का था जो राजाओं के पराक्रम, उनकी दयालुता और विजय गाथाओं का गुणगान करता था। इस काल में जन्म लेनेवाली अनेक जातियाँ सामाजिक क्षेत्र में अब भी सक्रिय हैं। राजाओं के दरबार में मुख्यतः लिखने पढ़ने का कार्य करनेवाली कायस्थ जाति भी इसी काल में प्रकाश में आई। इसके अलावे सिक्ख, जाट आदि समुदाय भी राजनीतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हुए।

© BSEB WEBCOPY, NOT TO BE REPUBLISHED

इस समय बिहार में बहुत से जनजातीय समूहों का उदय हुआ जिसमें चेरो राजवंश प्रमुख था। चेरो ने शाहाबाद, सारण, चम्पारण, मुजफ्फरपुर एवं पलामू जिलों में शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। चेरो लगभग 300 वर्षों तक इस क्षेत्र में एक शक्तिशाली राजवंश के रूप में बने रहे। चैनपुर (शाहाबाद जिला) पर बाघमल नामक चेरो सरदार का कब्जा था जिसके दो

बेटे चाँद एवं मुण्ड इस क्षेत्र के चण्डेश्वरी एवं मुण्डेश्वरी नामक मन्दिरों की लोक–कथाओं से जुड़े हैं।

आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन :–

प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के फलस्वरूप खेती योग्य भूमि की तलाश हो रही थी। जंगल काटे जा रहे थे। जंगलों में रहनेवाले वनवासियों को जंगल छोड़ना पड़ रहा था। कुछ वनवासी जंगलों को खेती योग्य भूमि बनाने में जुट गए।वे किसान बन गए। धीरे–धीरे उनके जीवन में जटिलता आने लगी। किसानों का ये नया समूह क्षेत्रीय बाजार, मुखियाओं, पुजारियों, मठों और मन्दिरों से प्रभावित होने लगे। किसानों के बीच सामाजिक और आर्थिक अन्तर दिखाई पड़ने लगा। उनके बीच ऊँच–नीच की भावना पनपने लगी। वे जातियों एवं उपजातियों में विभाजित होने लगे। ये जातियाँ स्वयं अपना नियम बनाती थीं। इन नियमों का पालन बड़े बुजुर्गों की एक सभा करवाती थी, जिसे इलाकों में जाति पंचायत कहा जाता था।

© BSTBPC
WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

ऐतिहासिक स्रोत (इतिहास को जानने के साधन):–

इतिहासकार अतीत की घटनाओं का अध्ययन करते हैं और इस काम में विभिन्न साधनों का उपयोग करते हैं। ऐसे सभी साधन स्रोत कहलाते हैं। पिछली कक्षा में भी आपने ऐतिहासिक स्रोतों के बारे में एक समझ विकसित की थी। इन स्रोतों में लिखित रचनाएँ अथवा पाण्डुलिपियाँ, अभिलेख, सिक्के, भग्नावशेष, चित्र, इत्यादि शामिल हैं। प्राचीन काल की तुलना में मध्यकाल में इन स्रोतों की संख्या में वृद्धि हुई और इनमें विविधता भी आई। किन्तु प्रधानता लिखित सामग्री की ही रही। जैसा कि आप जान चुके हैं कि तेरहवीं शताब्दी से भारत में कागज का प्रचलन व्यापक ढंग से होने लगा था। इस काल में लिखी गई पाण्डुलिपियाँ एवं प्रशासन संबंधी अन्य प्रपत्र अभिलेखागारों एवं पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं।

अभिलेखागार–
ऐसा स्थान जहाँ दस्तावेजों और पाडुंलिपियो को संग्रहित किया जाता है। आज सभी राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के अभिलेखागार होते हैं जहाँ वे अपने तमाम पुराने सरकारी अभिलेख और लेन–देन के ब्योरा का रिकार्ड रखते हैं।

कुछ ऐतिहासिक स्रोतों का

स्मरण करें जिसके बारे में आपने कक्षा छह में एक समझ विकसित की थी।

इस काल की अनेक घटनाओं की जानकारी हमें अभिलेखों से प्राप्त होती है। अभिलेख प्रायः पत्थरों, चट्टानों और ताम्रपत्रों पर लिखे गये थे। हमारे देश के बहुत सारे मन्दिरों–मस्जिद और गाँवों में अभिलेख आज भी हैं।

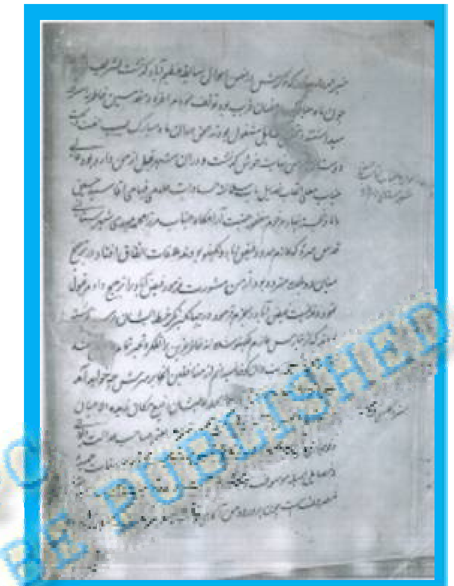

Qjeku

इस काल के स्रोतों में पाण्डुलिपियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है जिससे तात्कालिक इतिहास को जानने में मदद मिलती है। पांडुलिपियाँ हस्तलिखित सामग्री हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि आरम्भ में ताड़पत्रों और भोजपत्रों पर यह लिखी जाती थी। बाद में कागज पर लिखी जाने लगी। धीरे–धीरे कागज सस्ता होता गया और बड़े पैमाने पर उपलब्ध होने लगा। इस युग में आप पाते हैं कि प्रामाणिक लिखित सामग्री की संख्या और विविधता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। ये पाण्डुलिपियाँ अनेक भाषाओं में हैं जिनका हम आज इस्तेमाल करते हैं। फरमान राजा द्वारा निर्गत आदेश प्रत्र को कहते थे। अधिकतर ऐसे आदेश पत्र भूमि अनुदान से संबंधित थे। प्रस्तुत फरमान जो औरंगजेब के शासनकाल से संबंधित है शेख फैजुल्लाह नामक व्यक्ति को प्रदान किया गया था जिसमें स्पष्ट आदेश है कि उस क्षेत्र की समस्त कृषियोग्य व अन्य भूमि एवं उससे प्राप्त राजस्व और अन्य उत्पादों पर शेख फैजुल्लाह के कुल (वंश) का नियंत्रण होगा और उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों का होगा।

vfHkys[k

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

इस फरमान से जागीरों को अनुवांशिक बनाने का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त होता है।

उन दिनों छापखाने नहीं थे इसलिये लिपिक या नकलनवीस उन पाण्डुलिपियों की प्रतिकृति (नकल) तैयार करते थे। कालान्तर में प्रतिलिपियों की भी प्रतिलिपियाँ बनती गईं जो तुलनात्मक रूप से एक–दूसरे से काफी भिन्न होने लगीं।

आधुनिक पटना स्थित खुदाबख्श ओरियण्टल लाइब्रेरी मध्यकालीन भारतीय इतिहास को जानने एवं समझने के प्रमुख स्रोतों का केन्द्र है। इसमें अरबी तथा फारसी में लिखी ज्ञान–विज्ञान सम्बंधी ऐसी पुस्तकें हैं जिनसे मध्ययुगीन इतिहास और सस्कृति के बारे में मौलिक जानकारी प्राप्त होती है।

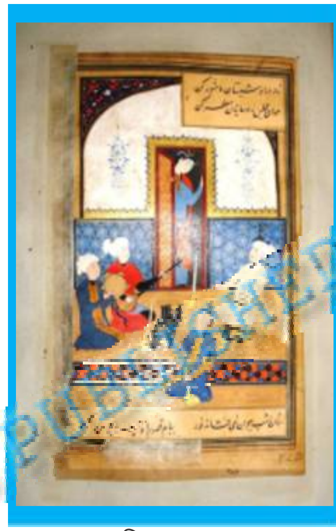
लघु चित्र का नमूना

उस समय की कई पुस्तकें सचित्र होती थीं। ये चित्र अक्सर किताब के पूरे पन्ने पर छोटे–छोटे चित्रों के रूप में सजे होते थे। इन लघु चित्रों को मिनियेचर कहते हैं। लघु चित्रों को मुगल दरबार एवं उत्तर और दक्षिणी भारत के राजपूत राजाओं के दरबार में महत्वपूर्ण स्थान मिला। इन चित्रों में अधिकतर शाही दरबार, शिकार और लड़ाई के मैदान का चित्रण होता था।

इस काल में अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना हुई। कल्हण की 'राजतंरगिनी' इस काल की पहली ऐतिहासिक रचना है जिसमें कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। अलबेरूनी की पुस्तक तहकीक–ए–हिन्द (तारीख–उल–हिन्द) से उस समय के समाज, धर्म, रीति–रिवाज आदि पर विस्तृत एवं प्रमाणिक जानकारी मिलती है। मिन्हाज उस सिराज कृत तबकात–ए–नासिरी में मोहम्मद गोरी एंव गुलाम वंश के शासन पर विस्तृत चर्चा है। जियाउद्दीन बरनी की पुस्तक तारीख–ए–फिरोजशाही में तुगलक वंश के राजनीतिक घटनाओं शासन प्रबंध एंव सामाजिक स्थिति का वर्णन हैं। अबुल फजल के अकबरनामा में अकबर के शासनकाल का प्रशासन एंव राजनीतिक का चित्रण है। इसके अतिरिक्त और भी कई पुस्तकें इस काल की जानकारी के प्रमुख

स्रोत हैं।

ukek & नामा शब्द सामान्यतः उन ऐतिहासिक रचनाओं के शीर्षक में शामिल है जो मुगलकालीन दरबारी संरक्षण में लिखी गई। इस परम्परा का आरंभ अकबर के समय में अबुल फजल के अकबरनामा से होता है।

संस्मरण :– किसी व्यक्ति के जीवन की उन बातों का वर्णन है जो उसे याद रहती है। वह अपनी रूचि और घटना के महत्व के अनुसार उसे प्रस्तुत करता है।

भारत के सन्दर्भ में मुगल शासक बाबर ने अपनी आत्मकथा "तुजुक–ए बाबरी" तुर्की भाषा में लिखी, जिसका फारसी अनुवाद "बाबरनामा" कहलाता है। उसने अपने लड़कपन की घटनाओं, लड़ाइयों यहाँ के महत्वपूर्ण शासक और उनके आपसी संबंध, यहाँ के लोगों का रहन–सहन, जलवायु, भूगोल आदि के संबंध में सजीव चित्रण किया है। उसने अपने पिता उमर शेख मिर्जा का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है :– वे कद में छोटे थे, उनकी दाढ़ी गोल और चेहरा मांसल था और वे मोटे थे। उनका चोगा इतना तंग रहता कि उसकी डोरियों को बांधने के लिए उन्हें अपना पेट अंदर पिचकाना पड़ता था। अगर वे पेट को ढीला छोड़ देते तो अक्सर चोगे के बंध टूट जाते। वे पहनावे और बोली दोनों ही में रूखे थे।

यात्रियों के वृतान्त भी इस काल के इतिहास के अध्ययन में सहायक हैं। इसमें सबसे प्रसिद्ध रचना अफ्रीकी यात्री इब्ने बतूता का वृतान्त है जिसे 'रेहला' कहा जाता है। इब्ने बतूता मराकश (मोरक्को) का निवासी था। विश्व यात्रा के दरम्यान वह मोहम्मद बिन तुगलक (मो0 बिन तुगलक के बारे में विस्तृत रुप से आप इकाई–3 में पढ़ेंगे) के शासनकाल में हिन्दुस्तान

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

आया और लगभग चौदाह वर्षों तक रहा। इस अवधि के दरम्यान उसने यहाँ के सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर व्यापक प्रकाश डाला है।

fIDdk d vè;;u dk U;eIefVDI dgr gA

सिक्कों के माध्यम से भी शासकों के तिथिक्रम को समझने में सहायता मिलती है। ये सिक्के सोना, चांदी, तांबा आदि के बने होते थे। इन सिक्कों से शासकों के राज्यारोहण साम्राज्य विस्तार, पड़ोसी शासकों के साथ संबंध एवं उनके आर्थिक समृद्धि के बारे में पता चलता है। तुगलक शासकों विशेषकर मुहम्मद बिन तुगलक के सिक्के बड़ी संख्या में मिले हैं। अपने राज्य में सासाराम के शासक शेरशाह सूरी ने चांदी के सिक्के चलाये। इसे आप आज भी संग्रहालयों में जाकर देख सकते हैं।

इस काल के शासकों के शासन काल में निर्मित अनेक भव्य मंदिरों, मस्जिदों, मकबरों एवं किलों से इस काल के धार्मिक जीवन तथा आर्थिक समृद्धि और वास्तुकला की जानकारी मिलती है। इनमें से कई इमारतों जैसे दिल्ली का लाल किला, आगरे का ताजमहल, खजुराहो के मन्दिर को आप आज भी देख सकते हैं।

इस काल में बिहार की वास्तुकला का इतिहास भी स्मरणीय है। शेरशाह का सासाराम (रोहतास जिला) स्थित मकबरा हिन्दु मुस्लिम स्थापत्य के सम्मिश्रण का एक सुन्दर नमूना है। मनेर में मख्दुम शाह दौलत का समाधि भवन भी एक उच्च कोटी के कला का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मध्यकाल में बिहार में निर्मित मन्दिरों में पटना से अठारह मील की दूरी पर स्थित वैकटपुर का शिव–मंदिर जिसके लिए राजा मानसिंह ने आर्थिक सहायता प्रदान की थी प्रसिद्ध है। रोहतास गढ़ में निर्मित हरिश्चन्द्र मंदिर के निर्माण का यश भी राजा मानसिंह को ही प्राप्त है।

इतिहासकार की भूमिका

WEBCOPY BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

जरा सोचिये इतिहास लेखन में इतिहासकार इन स्रोतों की मदद कैसे लेते हैं। इतिहासकार इन स्रोतों की मदद से बिना किसी भेदभाव के एक क्रमिक एवं सर्वमान्य समझ बनाने की कोशिश करते हैं। बीते हुए समय के बारे में कभी–कभी इतिहासकार को विचित्र परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। खासकर जब किसी एक ही व्यक्ति या घटना के सन्दर्भ में अलग–अलग मत रहते हैं।

आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें। सन् 1328 ई॰ में दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने एक आदेश जारी किया। उसने दिल्ली के निवासियों को आदेश दिया कि वे दिल्ली से दूर दक्षिण में दौलताबाद जाकर बसे। उस समय के दो इतिहासकारों ज़ियाउद्दीन बरनी और एसामी ने सुल्तान के राजधानी परिवर्तन की घटना को अपनी–अपनी किताबों में लिखा।

जियाउद्दीन बरनी

जियाउद्दीन बरनी ने अपनी पुस्तक 'तारीख–ए–फिरूजशाही' में लिखा–

"एक योजना सुल्तान के दिल में आयी कि दौलताबाद को राजधानी बनाया जाए। यह इसलिये क्योंकि दौलताबाद उसके साम्राज्य के मध्य में है। देहली, गुजरात, लखनौती, तिलंग, मावर, द्वारसमुद्र तथा कम्पिला, इस शहर से लगभग समान दूरी पर स्थित है। इस विषय में उसने किसी से परामर्श नहीं किया। उसने आदेश दिया कि उसकी अपनी माँ और राज्य के सारे बड़े अधिकारी व सेनापति अपने सहायक और विश्वासपात्रों के साथ दौलताबाद की ओर चलें। दरबार के हाथी–घोड़े, खजाना तथा बहुमूल्य वस्तुएं दौलताबाद भेज दी जायें। इसके पश्चात सूफी संत व आलिमों (इस्लामी ग्रंथों के अध्ययन करने वाले) तथा देहली के प्रतिष्ठित व प्रसिद्ध लोग दौलताबाद बुलाये गये। जो लोग दौलताबाद गये उन्हें सुल्तान ने खूब सारा धन इनाम में दिया। एक साल बाद सुल्तान देहली लौटा। उसने आदेश दिया कि देहली तथा आस–पास के कस्बों के निवासियों को काफिलों में दौलताबाद भेजा जाए। देहली वालों के घर उनसे मोल लिये जायें इन घरों की कीमत खजाने से दौलताबाद जाने वालों को दे दी जाए। ताकि वे वहां जाकर अपने लिए घर बनवा लें। शाही आदेशानुसार देहली तथा आसपास के निवासी दौलताबाद की ओर भेज दिये गये।

© BSIPRC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

देहली शहर इस प्रकार खाली हो गया। कुछ दिनों तक दिल्ली के सारे दरवाजे बन्द रहे, शहर में कुत्ते–बिल्ली तक न रह पाये। देहली के निवासी जो वर्षों से वहाँ रहते चले आ रहे थे, लम्बी यात्रा के कष्ट से रास्ते में ही मर गये। बहुत से लोग जो कि दौलताबाद पहुँचे अपनी मातृभूमि से बिछड़ने का दुःख सहन नहीं कर सके। वे वापस होने की इच्छा में ही मर गये। यद्यपि सुल्तान ने देहली से जाने वाली प्रजा को अत्यधिक इनाम दिये, वह परदेस के कष्टों को सहन न कर सकी।

इसके बाद दूसरे प्रदेशों से आलिमों, सूफियों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को लाकर देहली में बसाया। मगर इस प्रकार लोगों के लाने से देहली आबाद न हो सकी।

''लगभग पाँच–छः साल बाद सुल्तान ने आदेश दिया कि जो भी दिल्ली लौटना चाहता है वह लौट सकता है। कुछ लोग लौट गए मगर बहुत से परिवार दौलताबाद में ही बस गये।'

एसामी :

एसामी ने अपनी किताब ''फुतूह उस सालातिन'' में लिखा–''सुल्तान को देहली वालों पर संदेह था और वह उनके लिए मन में विष छिपाये रहता था। उसने गुप्त रूप से एक कुत्सित योजना बनाई कि एक महीने में देहली का विनाश कर दिया जाये। उसने सूचना कराई कि –जो कोई सुल्तान का हितैषी हो वह दौलताबाद की ओर प्रस्थान करें। जो कोई इस आज्ञा का पालन करेगा उसे अत्यधिक संपत्ति मिलेगी जो कोई इसका पालन न करेगा इसका सिर काट डाला जाएगा।''

उसने आदेश दिया कि देहली में आग लगा दी जाए और सभी लोगों को नगर से बाहर निकाल दिया जाए। परदेवाली स्त्रियों तथा एकांतवासी सूफियों को उनके घरों से बाल पकड़कर निकाला गया। इस प्रकार वे लोग देहली से निकले।

मेरे दादा भी उसी शहर में रहते थे। उनकी उम्र 90 वर्ष थी और वे एकांतवासी संत थे। वे कभी अपने घर से नहीं निकलते थे। वे पहले पड़ाव में ही मर गये। उन्हें वहीं दफन कर दिया गया।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

सभी बूढ़े, युवक, स्त्री तथा बालक यात्रा करने के लिए विवश थे। बहुत से बालक दुध के बिना मर गये। अनेक लोगों ने प्यास के कारण प्राण त्याग दिये। उस काफिले में से अत्यधिक कठिनाई सहन करके केवल दसवां भाग ही दौलताबाद पहुँच सका। सुल्तान ने इस तरह एक बसा हुआ शहर नष्ट कर डाला।

जब देहली में कोई न रह गया तो सारे द्वार बन्द कर दिये गये। सुना जाता है कि कुछ समय बाद अत्याचारी बादशाह ने आस–पास के गांवों के लोगों को बुलाकर देहली को बसवाया। तोतों और बुलबुलों को बाग से निकालकर कौओं को बसा दिया।

न जाने सुल्तान को किस प्रकार उन निर्दोष लोगों पर संदेह उत्पन्न हो गया कि उसने उनके पूर्वजों की नींव उखाड़ डाली और आज तक उनकी सन्तानों के विनाश में तल्लीन है।''

आपके ध्यान में यह बात आ गई होगी कि मुहम्मद तुगलक की योजना के बारे में कुछ बातें ऐसी हैं जिसपर बरनी और एसामी दोनों इतिहासकार एकमत रखते हैं। जैसे सुल्तान ने लोगों को देहली से दौलताबाद जाने का आदेश दिया।

पर देहली से दौलताबाद जाने की घटना के बारे में बरनी कई ऐसी बातें लिखता है जो एसामी नहीं लिखता। जैसे बरनी लिखता है कि सुल्तान अपने राज्य की राजधानी बीचों–बीच बनाना चाहता था, इसलिए उसने लोगों को दौलताबाद भेजा।

पर एसामी के अनुसार सुल्तान के मन में ऐसा विचार नहीं था। एसामी के अनुसार सुल्तान लोगों को कष्ट देना चाहता था। इसलिए उसने देहली खाली करवाई।

यह हमारे लिए परेशानी की बात है। अब हम यह कैसे जानें कि सुल्तान के मन में वास्तव में क्या विचार था? इस विषय में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते हैं। ऐसी कठिनाई बहुत बार हमारे सामने आती है। जो बातें दोनों लिखते हैं उनके बारे में तो हम सोच सकते हैं कि वे जरूर हुई होंगी। पर जो बातें एक ही व्यक्ति कह रहा है उनके बारे में हम झट से यकीन के साथ नहीं कह सकते कि वे जरूर हुई होगी।

बीते हुए समय के बारे में जब इतिहासकार आज लिखते हैं तो वे अक्सर इस

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

कठिनाई से जूझते हैं। बीते समय के बारे में कुछ बातें तो पक्की तरह से कहीं जा सकती हैं, पर बहुत सी बातों के बारे में पक्की तरह से नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिस्थिती में इतिहासकार अन्य स्रोतों को ढूँढ़ते हैं।

समय के साथ इतिहास को समझना :

इतिहासकार इतिहास (अतीत) को समझने के लिए इसे समान विशेषता रखनेवाले कुछ बड़े—बड़े हिस्सों—युगों या कालों में बाँट देते हैं। पिछले कक्षा में जो आपने इतिहास पढ़ा था उसमें प्राचीन समाज के कई प्रकारों का समावेश था। इस कक्षा में जो इतिहास आप पढ़ेंगे उसे प्रायः मध्यकालीन इतिहास कहा जाता है। हमने ईसा की आठवीं शताब्दी को मध्यकाल का आरंभ तथा अठारहवीं शताब्दी को उसका अन्त मान लिया है। ऐसा क्यों? जब आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे तब देखेंगे कि आठवीं शताब्दी के आस—पास भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में काफी परिवर्तन हो रहे थे। सामाजिक नियम, धर्म, भाषा, कला इत्यादि जीवन के सभी क्षेत्रों को इन परिवर्तनों ने प्रभावित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि आठवीं शताब्दी के आस—पास भारत के इतिहास में एक नया युग आरंभ हुआ।

नए विचारों से समाज के सभी व्यक्ति एक साथ प्रभावित नहीं होते। यद्यपी भारत के इतिहास में कुछ परिवर्तन आठवीं शताब्दी से पहले ही आरंभ हो गए थे पर देश के कुछ भागों में उनका प्रभाव कुछ समय बाद ही अनुभव किया गया। इसलिए सामान्य दृष्टि से देखते हुए हम कह सकते हैं कि नये विचारों की शुरुआत आठवीं शताब्दी से हुयी और अठारहवीं शताब्दी आते—आते फिर अनेक परिवर्तन दिखने लगे। इसी कारण हम मध्यकाल का अंत और आधुनिक युग का आगमन लगभग अठारहवीं शताब्दी को मानते हैं। इन हजार वर्षों के दौरान इस उपमहाद्वीप के समाजों में प्रायः नए—नए परिवर्तन होते रहे। इस पुस्तक में जो आप पढ़ रहे हैं उसकी तुलना पिछली कक्षा में पढ़ी गई बातों से करने की कोशिश करें।

BSTBPC, WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

आइए फिर से याद करें :

(1) रिक्त स्थानों को भरें :–

(क) सोलहवीं सदी के आरम्भ में .... ने हिन्दुस्तान शब्द का प्रयोग किया।

(ख) .... एक विशेष प्रकार का फारसी इतिहास है।

(ग) .... लोगों द्वारा भारत में एक नये धर्म का आगमन हुआ।

(घ) **भारत में कागज** का प्रयोग .... शताब्दी के आस–पास हुआ।

(2) जोड़े बनाइए :–

राजतरंगिनी	दरिया साहब
भक्ति संत	सासाराम
तबकात– ए– नासिरी	वैकटपुर का शिव मंदिर
शेरशाह का मकबरा	कश्मीर का इतिहास
मानसिंह	मिनहाज–उस–सिराज

(3) मध्य काल के वैसे वस्त्रों की सूचि बनाइए जिसका व्यवहार हम आज भी करते हैं।

(4) वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में हुए दो प्रमुख प्राधैगिकिय परिवर्तनों को बताएँ।

(5) कागज का आविष्कार सर्वप्रथम कहाँ हुआ था।

आइए समझें :–

(6) वनवासियों को जंगल क्यों छोड़ना पड़ा?

(7) गंगा यमुनी संस्कृति से क्या समझते हैं?

(8) आठवीं शताब्दी के आस–पास हुए परिवर्तनों को लिखें?

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

आइए विचार करें :—

(9) क्या प्राचीन काल की तुलना में मध्य काल के अध्ययन के लिए ज्यादा स्रोत उपलब्ध है?

(10) जब एक ही व्यक्ति या घटना के संबंध में अलग—अलग मत आते हैं :— ऐसी परिस्थितियों में इतिहासकार क्या करते होंगे?

vkb, djds ns[ksa %&

(11) आप भी संस्मरण लिख सकते हैं। आप अपनी पसंद और रूचि के अनुसार किसी परिचित व्यक्ति या अपने जीवन की घटना को लिखिए।

(12) आजकल के प्रचलित सिक्कों से किन—किन बातों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है ?

© BSTBPC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

www.absol.in

2

नये राज्य एवं राजाओं का उदय

शबनम और इमरान दोनों को ऐतिहासिक धारावाहिक देखने का शौक था। ऐसा ही एक धारावाहिक 'पृथ्वीराज चौहान' का दूरदर्शन पर प्रसारण हो रहा था। इस धारावाहिक को देख दोनों के मन में पृथ्वीराज से संबंधित कई प्रश्न पैदा हुए जैसे–

(i) पृथ्वीराज किस राज्य का राजा था ?

(ii) उस समय इनके समकालीन और कौन–कौन राजा हुए ?

(iii) उस समय हमारे देश की राजनैतिक स्थिति कैसी थी ?

पिछले अध्याय में आपने देखा कि भारत के पश्चिमी किनारे पर अरबों का आगमन हुआ और उनकी सत्ता स्थापित हुई। इसी समय उत्तरी एवं मध्य भारत के राजनीतिक मानचित्र पर राजपूतों का उदय हुआ। सच तो यह है कि गुप्त वंश के पतन के बाद 7वीं से 12वीं सदी के बीच एक नई प्रवृत्ति का उदय हुआ। राजनीति के क्षेत्र में टूट की प्रक्रिया आरम्भ हुई जिसके परिणामस्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत में अनेक छोटे–छोटे क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। समय–समय पर हर्ष जैसे शासकों ने एक बड़े भू–भाग

मानचित्र सातवीं–बारहवीं शताब्दियों के प्रमुख राज्य

© BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

www.absol.in

पर शासन करने का प्रयास किया, परन्तु बाद के शासकों को उसमें आशातीत सफलता नहीं मिली।

नये राजवंशों का उदय :– मानचित्र 1 में उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों को दिखाया गया है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इनमें से कई राजवंश के राजाओं के अधीनस्थ कर्मचारी, सामंत, बड़े भू–स्वामी एवं योद्धा सरदार थे। जब उनके स्वामी कमजोर पड़ गए तो उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रकूट कर्नाटक के चालुक्य राजाओं के अधीन थे। आठवीं सदी के मध्य में एक राष्ट्रकूट प्रधान, दंतीदुर्ग ने अपने को शासक के रूप में स्थापित कर राष्ट्रकूट वंश की नींव डाली। दक्षिणापथ के उत्तरी भाग में मान्यखेत उसकी राजधानी थी। इसे आप मानचित्र 1 में देख सकते हैं। कुछ अन्य शासक जैसे गुर्जर प्रतिहार सम्भवतः ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने परम्परागत कार्य छोड़कर शस्त्र अपना लिया और मध्य भारत (राजस्थान एवं गुजरात) में एक स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की। इस वंश का महत्वपूर्ण राजा नागभट्ट प्रथम था जिसने अरबों से लोहा लिया। ग्वालियर प्रशस्ति में उसे मलेच्छों का नाशक बताया गया है।

ukxHkVV dh miyfCèk;k¡ %& कई शासकों ने प्रशस्तियों में अपनी उपलब्धियों का वर्णन किया है, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) से मिली संस्कृत की एक प्रशस्ति में प्रतिहार नरेश नागभट्ट के कामों का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

आंध्र, सैंधव (सिंध), विदर्भ (महाराष्ट्र का एक हिस्सा) और कलिंग (उड़ीसा का एक हिस्सा) के राजा उनके आगे तभी धराशायी हो गए जब वे राजकुमार थे........ उन्होंने कन्नौज के शासक चक्रयुद्ध को विजित किया.......

उन्होंने वंग (बंगाल का हिस्सा), अनर्त (गुजरात का हिस्सा), मालवा (मध्य प्रदेश का हिस्सा) फिरात (वनवासी), तुरूष्क (तुर्क), वत्स, मत्स्य (दोनों उत्तर भारत के राज्य) के राजाओं को पराजित किया......

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जहाँ नए शासक उस क्षेत्र के महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा चुने गए थे। बिहार एवं बंगाल के प्रथम पाल शासक गोपाल का चयन ऐसे ही हुआ था। तिब्बती इतिहासकार लामा तारनाथ भी इसकी पुष्टि करते हैं। खलीमपुर ताम्र–पत्र से भी ज्ञात होता है कि अराजकता से तंग आकर बंगाल की प्रजा ने स्वयं गोपाल को अपना राजा चुना। इसी के वंशज आगे पाल वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कुछ उदाहरण महिला शासकों का भी है। महिला शासक का सबसे जाना माना उदाहरण कश्मीर की रानी का है जो दिद्दा (बड़ी बहन) के नाम से लोकप्रिय थी। वह

मंत्रियों और सेना की मदद से रानी बनी।

ऊपर वर्णित दृष्टान्तों से हम समझ सकते हैं कि :

- यह जरूरी नहीं था कि शासक किसी शासकीय परिवार से ही संबंधित हो।
- अधीनस्थ कर्मचारी कुछ स्थितियों में शासक भी बन सकते थे।

अन्य लोग मंत्रियों, सैनिकों और महत्वपूर्ण लोगों के समर्थन से शासक बने। इस काल के इतिहास में चार राजपूत वंश सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। वे प्रतिहार (या परिहार), चौहान (या चहमान), सोलंकी (या चालुक्य), और परमार थे। कई सामन्तों ने भी स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की।

सामंत :– उस समय के कई अभिलेखों और किताबों में इस वर्ग के लोगों का जिक्र है। इस वर्ग के लोगों के लिए कई नाम भी प्रचलित थे। जैसे : सामंत, राय, ठाकुर, राणा और रावत। आपको याद होगा कि पहले के समय के राजा युद्ध में जब किसी राजा को हराते थे, तो उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लेते थे। लेकिन आपको यह जानकर आश्चर्य भी होगा कि 400 ई0 से 1000 ई0 के बीच के समय में युद्ध में हारे हुए राजाओं को आमतौर पर अपने राज्य वापस भी मिल जाते थे। बदले में उन्हें कुछ शर्तें माननी पड़ती थीं। पराजित राजा को यह स्वीकार करना पड़ता था कि विजयी राजा उसका स्वामी है और वह विजयी राजा के चरणों में रहनेवाला सेवक। विजयी राजा अधिपति कहलाता था। पराजित राजा उसका सामंत कहलाता था। यह दिखाने के लिए कि वह किस राजा का सामंत है, पराजित राजा को अपने नाम के आगे यह बात लिखनी पड़ती थी। इसका एक उदाहरण पढ़िए।

> उपाधि का क्या अर्थ होता है ? शिक्षक की सहायता से आपस में चर्चा करें।

"परमभट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज श्री भोजदेव के चरणों में रहनेवाले महासामन्त महाराजाधिराज श्री क्षितिपाल का शासन था।"

आपने क्या पाया ? आपने पाया होगा कि भोजदेव और क्षितिपाल दोनों के नामों के साथ उपाधियाँ लगी हैं। पर सामंत की उपाधि राजा की उपाधि से छोटी है। इसी से

© BSTBPC
WB COPY NOT TO BE PUBLISHED

पता चलता है कि राजा अधिक शक्तिशाली माना जाता था। सामन्त बनने पर हारे हुए राजा को और भी कई शर्तें माननी पड़ती थीं। उसे अधिपति के दरबार में समय–समय पर मूल्यवान भेंट भेजनी पड़ती थी। मौके पर उसे खुद अधिपति राजा के दरबार में हाजिर होना पड़ता था। आवश्यकता पड़ने पर सामंत को अधिपति राजा की मदद के लिए अपनी सेना भी भेजनी पड़ती थी। इस समय जितने भी छोटे–बड़े राजा थे वे सामन्त बनाने की नीति ही अपनाते थे।

भूमि के स्वामित्व और उससे संबंधित सेवा की कुछ शर्तों पर आधारित व्यवस्था को सामंतवादी व्यवस्था कहते हैं।

राज्यों में प्रशासन :– राजा प्रशासन का केन्द्र बिन्दु अर्थात सर्वशक्तिमान होता था। जैसा कि उनकी बड़ी–बड़ी उपाधियाँ जैसे, महाराजाधिराज (राजाओं के राजा) परमभट्टारक, परमेश्वर, त्रिभुवन–चक्रवर्तिन (तीन भुवनों का स्वामी) आदि से बोध होता है। अभिलेखों तथा तत्कालीन साहित्य में केन्द्रीय शासन से संबद्ध अनेक पदाधिकारियों का उल्लेख है, जैसे संधि–विग्रहिक (विदेशी विभाग का प्रधान) अक्षपटालिक (आर्थिक या राजस्व मंत्री), भाण्डागारिक (राजकीय भंडार का अधिकारी), महादण्डनायक (पुलिस विभाग का प्रधान) आदि। सर्वशक्तिमान होने के बावजूद राजा अपने सामन्तों के साथ–साथ ब्राह्मणों, किसान तथा व्यापारी संगठनों के साथ सत्ता की साझेदारी करते थे। प्रायः राज्यों में उत्पादकों का एक वर्ग था जिसमें किसान, पशुपालक एवं कारीगर आते थे। राज्य की आय के अनेक स्रोत थे, किन्तु मूलस्रोत राजस्व ही था जिसे राजयोग या उपरिकर कहा जाता था। सभी उत्पादकों से अपने उत्पाद का एक हिस्सा लगान मानकर वसूला जाता था।

यह थोड़ा संस्कृत और थोड़ा तमिल में लिखा हुआ ताम्रपत्रों का एक संग्रह है, जिसमें नौवीं सदी में एक शासक के द्वारा दिए गए भूमि अनुदान का उल्लेख है। जिन कड़ियों से ये पत्र जुड़े हैं उन पर राजसी मुहर लगी है जो यह बतलाने के लिए है कि यह एक प्रमाणिक दस्तावेज है।

व्यापार तथा उद्योग कर भी आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत था। किसानों को अपनी उपज का 1/6 तथा 1/3 के बीच भू–राजस्व देना होता था। उपरोक्त स्रोतों से प्राप्त आय

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

का एक बहुत बड़ा हिस्सा मंदिरों और किलों के निर्माण में लगाए जाते थे। इन संसाधनों का उपयोग युद्धों में भी होता था।

राजा लोग प्रायः ब्राह्मणों को भूमि अनुदान से पुरस्कृत करते थे। ये ताम्र पत्रों पर अभिलिखित होते थे, जो भूमि पाने वालों को दिए जाते थे। ये ब्राह्मण शासकों के लिये यज्ञ करते थे। वे शासकों के लिए वंशावली भी तैयार करते थे जिसमें यह दिखाने का प्रयास करते थे कि शासक किस प्रकार से पुराने और वैभवशाली शासक परिवारों से संबंधित हैं।

कन्नौज के लिए संघर्ष :– जैसा कि आप जानते हैं कि भारत पर अरबों के आक्रमण के बाद सम्पूर्ण प्रायद्वीप में तीन महत्वपूर्ण शक्तियों का उदय हुआ। ये तीन महत्वपूर्ण शक्तियाँ थीं मध्य एवं पश्चिम भारत के गुर्जर–प्रतिहार, दक्कन के राष्ट्रकूट और बंगाल के पाल। अपने–अपने क्षेत्रों में इन सभी ने लम्बे समय तक राज किया, किन्तु इन सभी का अधिकांश समय आपसी संघर्ष में बीता। इस संघर्ष का अखाड़ा कन्नौज बना। आइए इस पर गौर करें कि कन्नौज आखिर क्यों इनके संघर्ष का केन्द्र बिन्दु बना ?

(1) जैसा कि कक्षा छः में आपने पढ़ा था कि कन्नौज हर्ष की राजधानी, और उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। जो इस नगर पर अधिकार कर लेता, वह उत्तर–भारत के राजा के रुप में प्रतिष्ठित हो जाता था।

(2) पालों के लिए मध्य भारत तथा पंजाब, और प्रतिहारों एवं राष्ट्रकुटों के लिए गंगा के मैदान में पहुँचने के मार्ग पर कन्नौज से बेहतर नियंत्रण हो सकता था।

(3) कन्नौज गंगा के तट पर स्थित होने के कारण नदी मार्ग से होने वाले व्यापार की दृष्टि से उत्तर एवं पूर्वी भारत के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी था।तीनों राज्य इस संघर्ष में लगे रहे और बारी–बारी से इन्होंने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इतिहासकारों ने इसे कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय (तीन पक्षों का) संघर्ष कहा है।

आप सोच रहे होंगे कि त्रिपक्षीय संघर्ष में विजयी कौन हुआ?

कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने की इच्छा रखने वाले तीनों शक्तियाँ परस्पर युद्ध करते–करते थक गये थे। वे आपस के युद्धों में इतने व्यस्त हो गए कि उनको यह भी पता न चला कि वे कितने कमजोर हो गए हैं। अंततः इन तीनों राज्यों का पतन हो गया। उनकी शक्ति लगभग एक समान थी और वे मुख्यतः विशाल सेनाओं पर निर्भर करती थी। इन सेनाओं का खर्च उठाने के लिए आवश्यक स्रोत भी एक समान थे। इनके राजस्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस सैन्य अभियानों में खर्च हो गया। हमेशा संघर्ष में लगे रहने के कारण इनका ध्यान अपने सामंतों से हट गया। अवसर का लाभ उठाकर धीरे–धीरे इन सामंतों ने अपने आपको स्वतंत्र

> इन तीनों के पतन के क्या कारण हो सकते हैं ? चर्चा करें।

WEBCOPY: NOT TO BE REPUBLISHED

www.absol.in

कर लिया। सामंतों की अवज्ञा और उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण के आक्रमणों ने उत्तरी भारत को और भी कमजोर कर दिया। जब उन पर उत्तर पश्चिम से तुर्कों का आक्रमण हुआ तब वे सही ढंग से अपनी रक्षा न कर सके। इन आक्रमण करनेवालों में सबसे पहला महमूद गजनवी था।

इससे पहले कि हम आक्रमणों का अध्ययन करें इस विषय में यह जानना आवश्यक है कि उस समय भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति क्या थी ?

उस समय सम्पूर्ण प्रायद्वीप अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बँटा था। इनके आपसी संबंध अच्छे नहीं थे। उत्तरी भारत में हिन्दूशाही, कन्नौज, कालिंजर, गुजरात, बुन्देलखण्ड, मालवा, बंगाल, कश्मीर, इत्यादि कुछ प्रमुख राज्य थे। इनमें कोई भी राज्य इतना शक्तिशाली नहीं था जो इन्हें एक रखकर योग्य नेतृत्व प्रदान कर सके। राजनीतिक एकता के अभाव में सांमतीकरण की प्रकिया भी जारी रही। एक केन्द्रीय राज्य के अर्न्तगत अनेक छोटे–बड़े सामंतों का अस्तित्व था। ये सामंत अपनी क्षेत्रीय चेतना तथा सैनिक शक्ति द्वारा केन्द्रीय सत्ता को कमजोर करने का अवसर तलाशते रहते थे। यद्यपि राजपूत उस समय उत्तर भारत की महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति थे पर उनकी कुछ अपनी कमजोरियाँ थीं। राजपूतों में युद्ध को गौरवपूर्ण रूप प्रदान किया गया था। प्रायः शासक अपने सम्मान की रक्षा के लिए आपस में ही युद्ध करने के लिए तत्पर रहते थे। इन राज्यों में बाहरी आक्रमणकारियों का मिलकर सामना करने की भावना नहीं के बराबर थी। इसके अतिरिक्त दो मुस्लिम राज्य भी थे। मुल्तान का राज्य जिसमें शियाओं का प्रभुत्व था और मंसूरा (सिन्ध) का राज्य जिसमें अरब वंशी शासक था।

तुर्क आगमन के समय भारत की सामाजिक दशा भी बहुत अच्छी नहीं थी। तत्कालीन समाज में शासक वर्ग, सैनिकों एवं आम जनता में तालमेल का अभाव था। राजा और जनता के बीच दूरी काफी अधिक थी। प्रशासन तथा सेना के कुछ पदों पर ब्राह्मणों तथा राजपूतों की अधिकांश नियुक्तियाँ वंशानुगत होती गईं। इसमें एक ओर तो अन्य वर्ग तथा जाति के लोग राज्य के प्रति उदासीन होते गये और दूसरी ओर अयोग्य व्यक्ति भी उत्तराधिकार के रूप में उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त करने लगे। समाज का हर व्यक्ति सैनिक नहीं बन सकता था। देश जैसी व्यापक अवधारणा से आम लोग परिचित नहीं थे। शासकों के बदल जाने से आम जनता को कोई फर्क नहीं पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में निम्न वर्ग में संकट के समय में राज्य के लिए कुछ कर सकने की भावना नहीं के बराबर थी। इस काल में परम्परागत चार मुख्य वर्ण अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के अतिरिक्त अनेक उपजातियाँ एवं नयी जातियों का प्रार्दुभाव हुआ। वर्ण व्यवस्था ने लोगों की विचारधारा को संकुचित कर दिया और उसमें बाहरी आदान–प्रदान के लिए स्थान न रहा। जैसा कि तारीखे–हिन्द के लेखक

SOL www.absol.in

अलबेरूनी ने संकेत किया ''हिन्दुओं में यह दृढ़ विश्वास है कि भारत के समान और कोई देश नहीं है, कोई ऐसा राष्ट्र नहीं है, कोई राजा उनके राजा के समान नहीं है तथा अन्य कहीं भी विज्ञान उनके विज्ञान के समान नहीं है।''

महमूद गजनवी

गजनी,आधुनिक अफगानिस्तान में स्थित एक छोटा सा राज्य था। एक तुर्क सरदार ने दसवीं शताब्दी में इस राज्य की स्थापना की थी। उसके उत्तराधिकारियों में महमूद भी था। वह गजनी को एक बड़ा और शक्तिशाली साम्राज्य बनाना चाहता था। अतः उसने मध्य एशिया के कुछ भागों, ईरान और उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी हिस्से को जीत लेना चाहा। सन् 1010 और 1025 के बीच महमूद ने उत्तर भारत के केवल उन नगरों पर आक्रमण किया जिनमें बहुत से सम्पन्न मन्दिर थे। इन नगरों में मथुरा, थानेश्वर, कन्नौज, वृंदावन, और सोमनाथ थे। इनमें गुजरात का सोमनाथ मंदिर अपने धन और वैभव के लिए काफी प्रसिद्ध था। सन् 1030 ई0 में महमूद की मृत्यु हो जाने पर उत्तर भारत के लोगों को राहत मिली क्योंकि उसके आक्रमणों से सामान्य जन–जीवन प्रभावित होता था।

> I keuKFk eafnj d ckjs es fo'k"k : i ls oxZ es f'k{kd dh lgk;rk ls ppkZ djsA

समकालीन इतिहासकारों ने महमूद के भारत आक्रमणों के उद्देश्य का विवरण देते हुए लिखा है कि महमूद भारत में इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करना चाहता था। जबकि कुछ इतिहासकार का मानना है कि महमूद का उद्देश्य भारत में धन लूटना ही था ताकि इस धन से मध्य एशिया में साम्राज्य–विस्तार के लिए सैनिक साधन जुटा सके।

©BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

आक्रमणों का प्रभाव

महमूद के आक्रमणों का प्रभाव भारत पर स्थायी नहीं प्रतीत होता है। उसने भारत में कोई स्थायी राज्य बनाने का प्रयास नहीं किया। हर विजय–अभियान के बाद धन लूटकर वह गजनी वापस लौटता रहा। भारत पर उसने लगभग सत्रह बार आक्रमण किए और प्रत्येक बार भारतीय राजाओं की सैनिक शक्ति को आघात पहुँचाया तथा उन्हें पराजित किया। इन आक्रमणों से बाहरी शक्तियों को भारत की राजनीतिक एवं सैनिक दुर्बलता का पता चला। आगे चलकर तुर्क और अफगानों ने कई बार भारत पर चढ़ायी की तथा एक स्थायी सम्राज्य की स्थापना में सफल रहे।

> vkid fopkj es egewn ds Hkkjr vkØe.k dk D;k mís'; gks ldrk g\

अपनी नकारात्मक छवि के बावजूद महमूद के आक्रमणों ने इस्लामी और हिन्दू

संस्कृति के बीच सम्पर्क में योगदान दिया। 'शाहनामा' नामक महाकाव्य का लेखक फिरदौसी उसी के संरक्षण में रहा। उसी ने मध्य एशिया के प्रसिद्ध विद्वान अलबेरूनी को भारत भेजा। उसने भारत के संबंध में अपनी प्रसिद्ध रचना ''तहकीकाते–हिन्द'' लिखी। इस पुस्तक में भारत और यहाँ के निवासियों के सामाजिक जीवन का विस्तार से वर्णन किया गया है।

महमूद गजनवी के आक्रमणों के लगभग डेढ़ सौ वर्षों बाद तुर्कों के आक्रमण का दूसरा चरण उत्तरी भारत में आरम्भ हो गया। इन आक्रमणों का नेतृत्व गौर के शासक मुहम्मद गौरी ने किया। उसकी इच्छा केवल लूटमार करने की ही नहीं थी, बल्कि वह उत्तर भारत को भी जीतकर अपने राज्य में मिला लेना चाहता था। मुहम्मद गौरी के अभियान बड़े व्यवस्थित होते थे। उसने यह महसूस किया कि मुलतान और सिंध को केन्द्र बनाकर भारत के भीतरी भाग को नहीं जीता जा सकता है। अतः उसने भारत विजय का केन्द्र पंजाब को बनाया। पंजाब विजय के फलस्वरूप उसके राज्य की सीमा, अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान की राज्य की सीमा से स्पर्श करने लगी। 1191 ई० में भटिंडा के निकट तराइन गाँव के मैदान मे हुये प्रथम युद्ध में गौरी पराजित हुआ। इस पराजय की परवाह किए बिना 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध में उसने पृथ्वीराज को पराजित किया। तराइन की जीत ने उत्तरी भारत में तुर्की राज्य की स्थापना को लगभग निश्चित कर दिया। गौरी के भारत पर आक्रमणों के दूरगामी परिणाम हुए। इसके फलस्वरूप दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई जिसके बारे में आप विस्तार से अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

दक्षिण के राज्य

उन दिनों उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत में भी

अनेक राज्य थे। ;मानचित्र–2 पर गौर करें), कृष्णा नदी के उत्तर के राज्य दक्षिण पथ के राज्य तथा कृष्णा नदी से दक्षिण के राज्य सुदूर दक्षिण के राज्य थे। दक्षिण पथ के राज्यों में राष्ट्रकूट तथा चालुक्य प्रमुख थे। इनके बारे में आप समझ चुके हैं। सुदूर दक्षिण के राज्यों में चोल, चेर, पाण्ड्य आदि प्रमुख थे। आधुनिक मदुरै क्षेत्र में चोल सम्राज्य के दक्षिण में पाण्ड्य राज्य था। आधुनिक केरल प्रांत में चेर वंश का शासन था।

एक नया शहर

राजेन्द्र चोल अपनी सेना को गंगा नदी तक ले गया। वहाँ से गंगा का पानी लेकर और अपने नये नगर में इस पानी को रखा। यह शहर **xxb&dk.M &pkyije** के नाम से जाना गया। इसका अर्थ था चोल शासक का नगर जो गंगा को लेकर आया था अर्थात् जिसने उत्तर भारत पर विजय प्राप्त की थी।

चोल राजाओं ने तंजौर के आस–पास के क्षेत्र तमिलनाडु से अपना शासन प्रारंभ किया। धीरे–धीरे पल्लव वंश के शासक और अन्य स्थानीय शासकों को पराजित कर अपने को दक्षिण में सबसे शक्तिशाली बना लिया। लेकिन साम्राज्य की स्थापना करने वाले आरंभिक चोल शासकों में विजयालय (846–871 ई0) था। उसने तंजौर को जीतकर अपने आपको एक स्वतंत्र राज्य का शासक घोषित किया।

चोल वंश के राजाओं में सबसे उल्लेखनीय राजा राजराज प्रथम और उसका पुत्र राजेन्द्र चोल है। राजराज प्रथम (958–1016 ई0) एक कुशल सेना संचालक था और उसने अनेक दिशाओं में आक्रमण किये। राजराज दक्षिण पूर्व एशिया के व्यापार में अरबों के आधिपत्य से परिचित था। अतः वह एक सामुद्रिक विजय के लिए निकला। उसने श्रीलंका और मालद्वीप नामक द्वीपों पर अधिकार जमाकर अरबों के आधिपत्य को चुनौती दी।

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

राजराज का पुत्र राजेन्द (1014–1044 ई0) अपने पिता से भी ज्यादा महात्वाकांक्षी था। उसने एक विशाल जल सेना का गठन किया। उसके दो युद्ध बड़े ही साहसिक और वीरतापूर्ण थे। एक तो वह जिसमें उसकी सेनाएँ पूर्व भारत के समुद्र तट से होकर उड़ीसा को पार करती हुई गंगा नदी तक पहुँच गयी।राजेन्द्र का दूसरा अभियान श्रीलंका एंव दक्षिण पूर्व एशिया (दक्षिण मलाया प्रायद्वीप तथा सुमात्रा) के देशों में हुआ था। इस अभियान में उसने जल एंव थल सेना का उपयोग किया। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य अपने राज्य के व्यापारिक हितों की रक्षा करना था।

चोल प्रशासन

चोल राजाओं के अनेक अभिलेखों से उनकी शासन व्यस्था की जानकारी मिलती है।

राजा राज्य में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति होता था। फिर भी शासन कार्यों के संचालन के लिए वह अपने मंत्री–परिषद् की सलाह लेता था। उसके आदेश (जिरूवाक्य केल्वी) उसका निजी सचिव लिख लिया करता था। कुछ अधिकारियों के नाम भी मिलते हैं इनमें ओलैनायकम् (प्रधान सचिव), पेरून्दरम् (प्रधान कर्मचारी) एवं शीरूत्तरम् (निम्न कर्मचारी) आदि उल्लेखनीय हैं। इस व्यवस्था से प्रतीत होता है कि चोल शासकों ने सुसंगठित नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) का विकास किया।

आज के नागरिक सेवा से चोलकालीन नागरिक सेवा की तुलना कर, चर्चा करें।

सम्पूर्ण चोल राज्य को राष्ट्र कहा जाता था। प्रशासन की सुविधा हेतु सम्पूर्ण राष्ट्र कई इकाइयों में विभक्त था जिन्हें मण्डलम कहा जाता था। प्रत्येक मण्डलम् , कोट्टम्(कमिश्नरी) और प्रत्येक कोट्टम नाडू (जिला) में बँटा था। पुनः प्रत्येक नाडू कुर्रम (तहसील या ग्राम समूह) में विभाजित किया गया था। मण्डलम का प्रधान तो राजवंशीय होता था लेकिन कोट्टम, नाडू व कुर्रम के अनेक अधिकारी व कर्मचारी होते थे। सभी अपने क्षेत्र की गतिविधियों की सूचना अपने से ऊपर वाली इकाइयों को देते थे।

ग्राम स्वशासनः–

गाँव का स्थानीय स्वशासन चोल शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषता थी। बहुत से गाँव में शासन का संचालन राजकीय कर्मचारियों के द्वारा न कर स्वयं गाँव वालों द्वारा किया जाता था। यहाँ तीन प्रकार की ग्राम सभाओं का उल्लेख मिलता है।

क्या आपके विद्यालय या गाँव में इस तरह की काई समिति कार्य करती है ?यदि हाँ तो कैसे ?

(1) उर (सर्वसाधारण लोगों की ग्रामसभा थी)

(2) सभा या महासभा (गाँव के वरिष्ठ ब्राह्मणो, जिन्हें vxgkj कहा जाता था, की सभा थी।)

(3) नगरम् (व्यापारी समुदाय की महत्वपूर्ण प्रशासकीय सभा थी।)

ग्राम सभा शासन कार्यों के संचालन के लिए कई समितियों का गठन करती थी। जैसे सामान्य प्रबंध समिति, उपवन समिति, सिंचाई समिति, कृषि समिति, शिक्षा समिति, लेखा जोखा समिति, आदि। समिति को वरियम् कहते थे इन समितियों के माध्यम से ग्राम सभा अनेक कार्य करती थी, जैसे मंदिर तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की देखरेख, व्यापार की सुविधा के लिए राजपथों का निर्माण एवं मरम्मत, सिंचाई, सफाई आदि। सभा के सदस्यों का चुनाव लौटरी द्वारा किया जाता था। समिति के सदस्यों के लिए कुछ योग्यताएँ निश्चित की गई थीं। इसकी जानकारी उत्तरमेरूर के अभिलेख से मिलती है।

©BSTBPC WEBCOPY. NOT TO BE PUBLISHED

अभिलेख

तमिलनाडु के थिंगलपुट जिले के उत्तरमेरूर अभिलेख के अनुसार सभा की सदस्यताः सभा की सदस्यता के लिए इच्छुक लोगों को ऐसी भूमि का स्वामी होना चाहिए, जहाँ से भू–राजस्व वसूला जाता है। उनके पास अपना घर होना चाहिए । उनकी उम्र 35–70 के बीच होनी चाहिए। उन्हें वेदों का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें प्रशासनिक मामलों की अच्छी जानकारी होनी चाहिए और ईमानदार होना चाहिए। यदि कोई पिछले तीन सालों में किसी समिति का सदस्य रहा तो वह किसी और समिति का सदस्य नहीं बन सकता। जिसने अपने या अपने संबंधियों के खातिर राजस्व जमा नहीं कराये हैं वह चुनाव नहीं लड़ सकता।

भव्य मंदिरः–

अभी आपने चोल सम्राज्य एंव उसकी कुछ विशेषताओं को देखा। आप सोच रहे होंगे कि इस साम्राज्य के शासक अपना ज्यादा समय युद्ध में ही बिताते होंगे। लेकिन चोल राजाओं द्वारा कई वैभव शाली और भव्य मंदिर बनाये गये, जिसमें तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर एवं गंगईकोण्डचोलपुरम के मंदिर प्रसिद्ध हैं ये मंदिर स्थापत्य और मूर्ति कला की सुंदर प्रस्तुति है। (इनके बारे में हम विस्तृत रूप से इकाई–5 में पढ़ेंगे) इन मंदिरों में पूजा–पाठ के साथ–साथ जीवन की अन्य गतिविधियाँ भी चलती थीं।

वृहदेश्वर मंदिर तंजावुर

©BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

चोल शासकों के काल में राजाओं, व्यापारियों तथा धन्य लोगों द्वारा मंदिरों को काफी मात्रा में सोना, चांदी एवं बहुमूल्य रत्नों के अतिरिक्त भूमि तथा ग्राम दान दिये जाने लगे। इससे मंदिर के कर्मचारियों (मंदिर के लिये काम करने वाले) जैसे– पुरोहित, मालाकार, बावर्ची, मेहतर, संगीतकार, नर्तक आदि की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इन कर्मचारियों को उनकी सेवा के बदले अनाज तथा बाद में भूमि भी दी जाने लगी। मंदिरों द्वारा भूमि हस्तांतरण करने के कारण मंदिर की आर्थिक व्यवस्था में

सामंती प्रवृतियों का समावेश होता गया। हस्तांतरित भूमि से अतिरिक्त कर की मांग से किसानों की परेशानी बढ़ी। इसके साथ ही केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने पर सांमती ढाँचे की आर्थिक व्यवस्था और मजबूत होती गई। चोल राज्यों का मंदिर सामाजिक कार्यों का केन्द्र भी था। उत्सवों, और धार्मिक त्योहारों पर आसपास के क्षेत्रों के लोगों के एकत्र होने का स्थान मंदिर ही था। मंदिर में ही ग्राम सभाएँ अपनी बैठके किया करती थीं। मंदिर के प्रांगण में ही विद्यालय लगता था। आमतौर पर ब्राह्मण ही पढ़ते और पढ़ाते थे। इन्हीं विद्यालयों में पांडुलिपियाँ सुरक्षित रखी जाती थीं।

> भारत के वैसे मंदिरों का पता लगाएँ जहाँ आज भी भक्तों द्वारा बहुमूल्य उपहार चढ़ाये जाते हैं। उपहार चढ़ाने के पीछे लोगों की क्या मंशा रहती हैं ?

कृषि और सिंचाई

चोल प्रशासन ने कृषि और सिंचाई पर समुचित ध्यान देकर अपने राज्य को समृद्ध बनाने का प्रयास किया। उस समय दक्षिण भारत में कृषि योग्य भूमि भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी।

इसके अतिरिक्त चोल सम्राटों ने जंगलों को साफ कराकर कृषि योग्य भूमि का पर्याप्त विस्तार किया था। उस समय दक्षिण भारत में सिंचाई के प्राकृतिक साधनों का अभाव था। इस समस्या के समाधान के लिए सिंचाई के अन्य कृत्रिम साधनों पर काफी बल दिया गया। समकालीन स्रोतों से हमें ज्ञात होता है कि सिंचाई के साधनों की रक्षा और विस्तार को पुण्य कार्य के रूप में देखा जाता था। सिंचाई के लिए कई पद्धतियाँ अपनाई जाती थीं। उस समय सिंचाई के लिए तालाब जलाशय (जिसमें जल द्वार हो) और कुओं का इस्तेमाल होता था। वर्षा के जल को बड़े–बड़े तालाबों में एकत्र किया जाता था। तालाब के जल को खेतों तक पहुँचाने के लिए नहरों का निर्माण किया गया।

> नवीं शताब्दी तमिलनाडु का एक जलद्वार। हौज से नदी की शाखाओं में पानी के प्रवाह का इसके जरिए नियंत्रित किया जाता था। इस पानी से खेत सींचे जाते थे।

© BSTBPC WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

'अणिकट' शब्द तमिल के दो शब्दों से मिलाकर बना है। 'अर्णि' अर्थात बाँध और 'कट्टू' अर्थात निर्माण। चोल शासकों के समय कावेरी नदी पर बनाया गया महा 'अणिकट' कावेरी नदी के पानी को सिंचाई के लिए प्रयोग करने का प्रथम प्रयास था।

बड़ी सिंचाई योजनाओं के लिए बाँध और अणिकट भी होते जो राज्य के नियंत्रण में थे। अब जरा गौर करें कि सिंचाई के कार्यो में योजना की जरूरत होती है। जैसे श्रम संसाधनों को व्यवस्थित करना, इस पर ध्यान देना कि पानी का बँटवारा कैसे हो। ज्यादातर शासकों एवं गाँव में रहनेवाले लोगों ने इन गतिविधियों में सक्रिय रूप से दिलचस्पी दिखाई। तालाबों की देख–रेख करना ग्राम सभाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य था।

पालवंश:–

BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

अवलोकितेश्वर (विष्णु)

जैसा कि आपने देखा कि आठवीं शताब्दी के मध्य पूर्वी भारत (बिहार एवं बंगाल) में पालवंश का उदय हुआ। इस वंश का संस्थापक गोपाल था जिसका चयन स्वंय वहाँ की जनता ने किया था। गोपाल के बाद धर्मपाल, देवपाल, एवं महिपाल अनेक ऐसे राजा हुये जिन्होंने उत्तरी भारत में एक मजबूत राज्य के रूप में उभारने का प्रयास किया। स्मरण करें इनमें से कई राजाओं ने त्रिपक्षीय संघर्ष में भाग लेकर इसे एक केन्द्रीय सत्ता बनाने की भरपूर कोशिश की। संभवतः बिहार का मुंगेर इनकी राजधानी थी।

पाल शासकों का काल, कला–कौशल स्थापत्य एवं शिक्षा के लिए विख्यात है। यहाँ हम उनकी मूर्ति कला एवं उनकी शिक्षा में दिये गये योगदानों की विशेष रूप से चर्चा करेगें।

मूर्ति कला की एक विशिष्ट शैली(भारतीय कला की पूर्वी भारत की मूर्ति शैली) का जन्म इस समय हुआ। नालंदा, बोधगया, कुर्किहार कला के केन्द्र बन गये जहाँ प्रस्तर एवं धातु प्रतिमाओं का बड़े पैमाने पर निर्माण हुआ। पालकालीन मूर्तियाँ तत्कालीन धार्मिक विश्वासों से प्रेरित होकर बनाये गये थे। इनमें ज्यादातर बुद्ध की मूर्तियाँ थीं ब्राह्मण, जैन एवं अन्य देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं। पूर्वी भारत की इस विशिष्ट मूर्ति कला में काले–स्लेटी रंग के कसौटी पत्थर का उपयोग किया है। इस शैली की मूर्तियाँ मुख्यतः पृष्ट–शिला पट्टा पर उकेर कर बनायी गयी है, प्रारंभ में मूर्तियों के प्रभा मण्डल अलंकृत नहीं थे बाद में अलंकृत प्रभा मण्डल बनाये गये साथ ही पृष्ठ शिखा को भी अभिप्रायों से अलंकृत किया गया।

भगवान बुद्ध

पालकला के अंतर्गत बौद्ध मूर्तियों में बुद्ध के अतिरिक्त बोधिसत्व, तारा, तंत्रयानी बौद्ध देव आदि प्रमुख है। ब्राह्मण देवताओं में विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, गणेश आदि की प्रतिमाएँ बनी। जैन मूर्तियों में लगभग सभी तीर्थंकरों का प्रतिनिधित्व देखने को मिलता है।

पटना संग्राहालय में संग्रहित पालकालीन सर्वोत्तम उदाहरणों में एकसारी (सारण) से प्राप्त अवलोकितेश्वर, भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्धा मैत्रेय की प्रतिमाएँ, मुंगेर से प्राप्त मकरमुख प्रणाल आदि प्रमुख हैं। इन्हें आप आज भी पटना संग्राहालय में जाकर देख सकते हैं। पाल शासकों के समय में कई महत्वपूर्ण शैक्षिक केन्द्रों की स्थापना हुई। प्रथम शासक गोपाल ने अपने शासन के दौरान ओदन्तपुरी (वर्त्तमान बिहारशरीफ) में एक मठ तथा विश्वविद्यालय का निमार्ण करवाया। धर्मपाल ने आज के भागलपुर जिले में विक्रमशिला विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया था। उसने नालंदा महाविहार को भी दान दिए।

©BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

अभ्यास

फिर से याद करें

(1) जोड़े बनाइए

सोमनाथ	गुर्जर प्रतिहार
पालवंश	लोगों द्वारा चयनित शासक
गोपाल	त्रिपक्षीय संघर्ष
कन्नौज	गुजरात
मध्य भारत	बंगाल

(2) दक्षिण के प्रमुख राज्य कौन–कौन थे ?

(3) उस समय राजा कौन–कौन सी उपाधियाँ धारण करते थे ?

(4) बिहार एवं बंगाल मे किन वंशों का शासन था।

vkb, l e>

(5) तमिल क्षेत्र में किस तरह की सिंचाई व्यवस्था का विकास हुआ?

(6) कन्नौज शहर तीन शक्तियों के संघर्ष का केन्द्र बिन्दु क्यों बना ?

(7) महमूद गजनवी अपने विजय अभियान में क्यों सफल रहा?

(8) सामंतवाद का उदय किस प्रकार हुआ?

© BSTBPC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

vkb, fवचार करें

(9) तत्कालीन राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था आज की प्रशासनिक व्यवस्था से कैसे भिन्न थी ?

(10) क्या आज भी हमारे समाज में सामंतवादी व्यवस्था के लक्षण दिखते हैं?

vkb, djd n[ks

(11) मध्यकाल के मंदिर अपनी धन दौलत के लिए काफी प्रसिद्ध थे। भव्यता के दृष्टिकोण से आप अपने पास के मन्दिर से तुलना करें।

(12) भारत के मानचित्र पर प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूट वंश द्वारा शासित क्षेत्रों को दिखाएँ । वर्तमान समय में ये भारत के किस भाग में अवस्थित हैं ?

3

तुर्क–अफगान शासक

स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त) के अवसर पर जुबैदा भारत के प्रधानमंत्री को दिल्ली स्थित लालकिला पर झंडा फहराते हुये टेलीविजन पर देख रही थी। अचानक उसके मन में यह प्रश्न उठा कि दिल्ली भारत की राजधानी कब बनी ?

आज से लगभग 950 वर्ष पहले तोमर राजपूत वंश के राजाओं के शासनकाल में दिल्ली नगर का विकास एक व्यापार व वाणिज्य केन्द्र के रूप में हुआ। इस नगर में कई धनी व्यापारी रहते थे। यहाँ 'दिल्लीवाल' नाम का सिक्का ढाला जाता था। 12वीं शताब्दी के मध्य में अजमेर के चौहान शासकों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। चौहान राजाओं ने अजमेर के साथ साथ दिल्ली को भी अपने प्रशासन का केन्द्र बनाया।

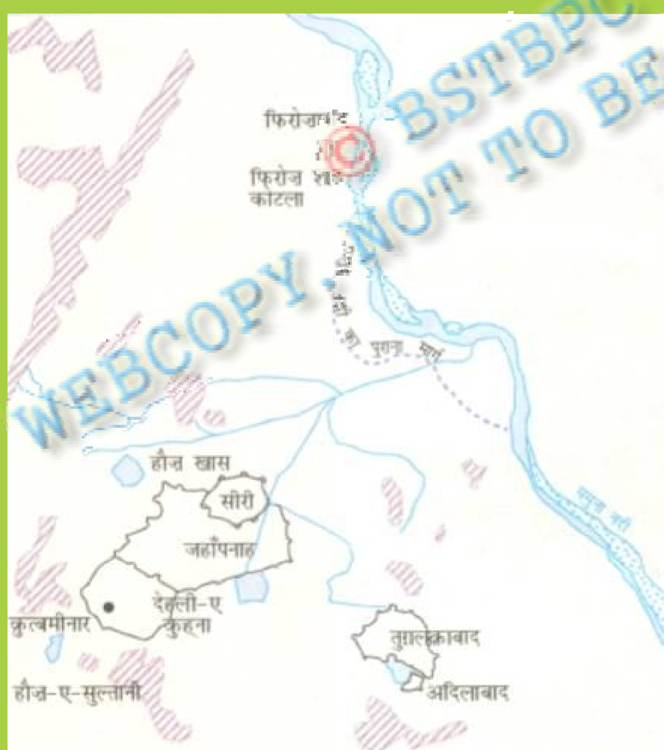

मानचित्र 1 दिल्ली का मानचित्र

13वीं शताब्दी के आरंभ में तुर्कों ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना की इसके साथ ही दिल्ली भारतीय उपमहाद्वीप के प्रशासन

WEBCOPY © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

SOL www.absol.in

का केन्द्र बन गया। लगभग 300 वर्षों से अधिक तक पाँच राजवंशों के सुल्तानों ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। तालिका 1 में इन पाँच राजवंशों की सूची दी गई है। दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में अनेक बस्तियाँ बसाईं, जिसे आज हम दिल्ली के अभिन्न अंग के रूप में जानते हैं।

मानचित्र 1 को देखकर दिल्ली में बसाए गए शहरों की सूची बनायें।

दिल्ली के सुल्तानः एक नजर

तालिका–1

1.प्रारंभिक तुर्क शासक (1206 से 1290 ई०)

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 से 1210 ई०)

इल्तुतमिश (1210 से 1236 ई०)

रजिया (1236 से 1240 ई०)

बलबन (1266 से 1287 ई०)

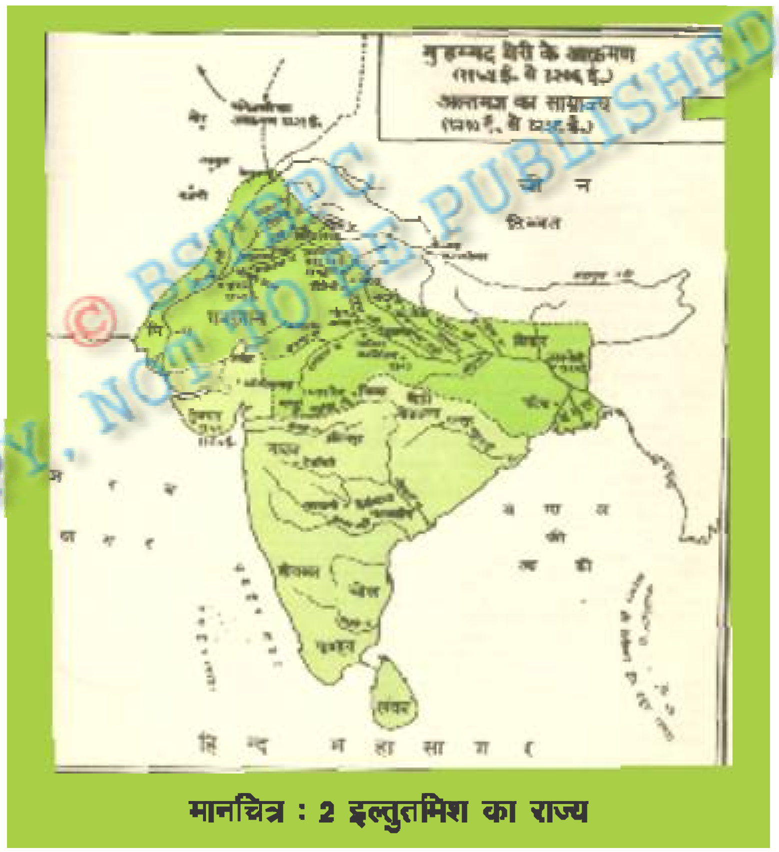

मानचित्र : 2 इल्तुतमिश का राज्य

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

www.absol.in

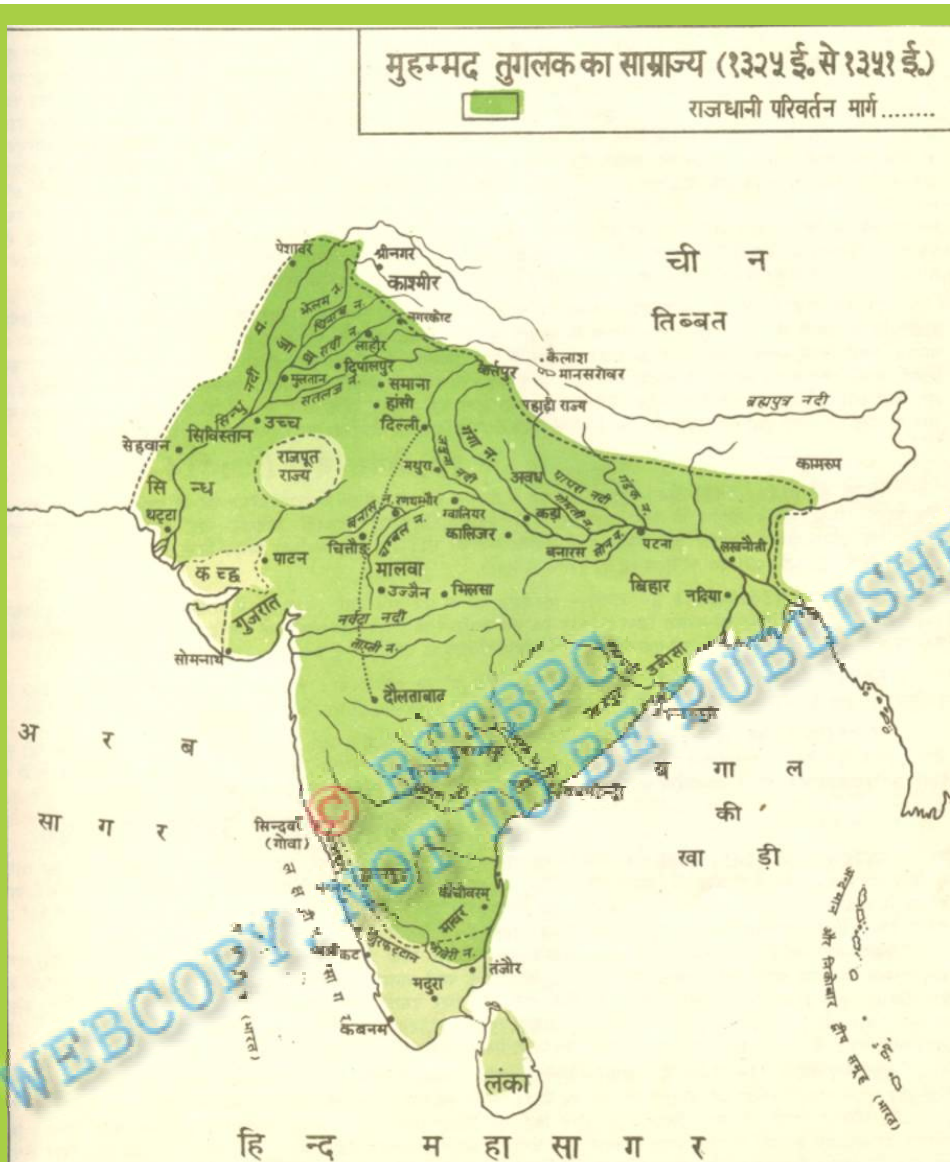

WEBCOPY - NOT TO BE PUBLISHED
© BSTBPC

मानचित्र 3 मुहम्मद तुगलक का साम्राज्य

2. **खिलजी वंश** (1290 से 1320 ई.)

जलालुद्दीन खिलजी (1290 से 1296 ई.)

अलाउद्दीन खिलजी (1296 से 1316 ई.)

3. **तुगलक वंश** (1320 से 1414 ई.)

गयासुद्दीन तुगलक (1320 से 1324 ई.)

मुहम्मद बिन तुगलक (1324 से 1351 ई.)

फिरोज शाह तुगलक (1351 से 1388 ई.)

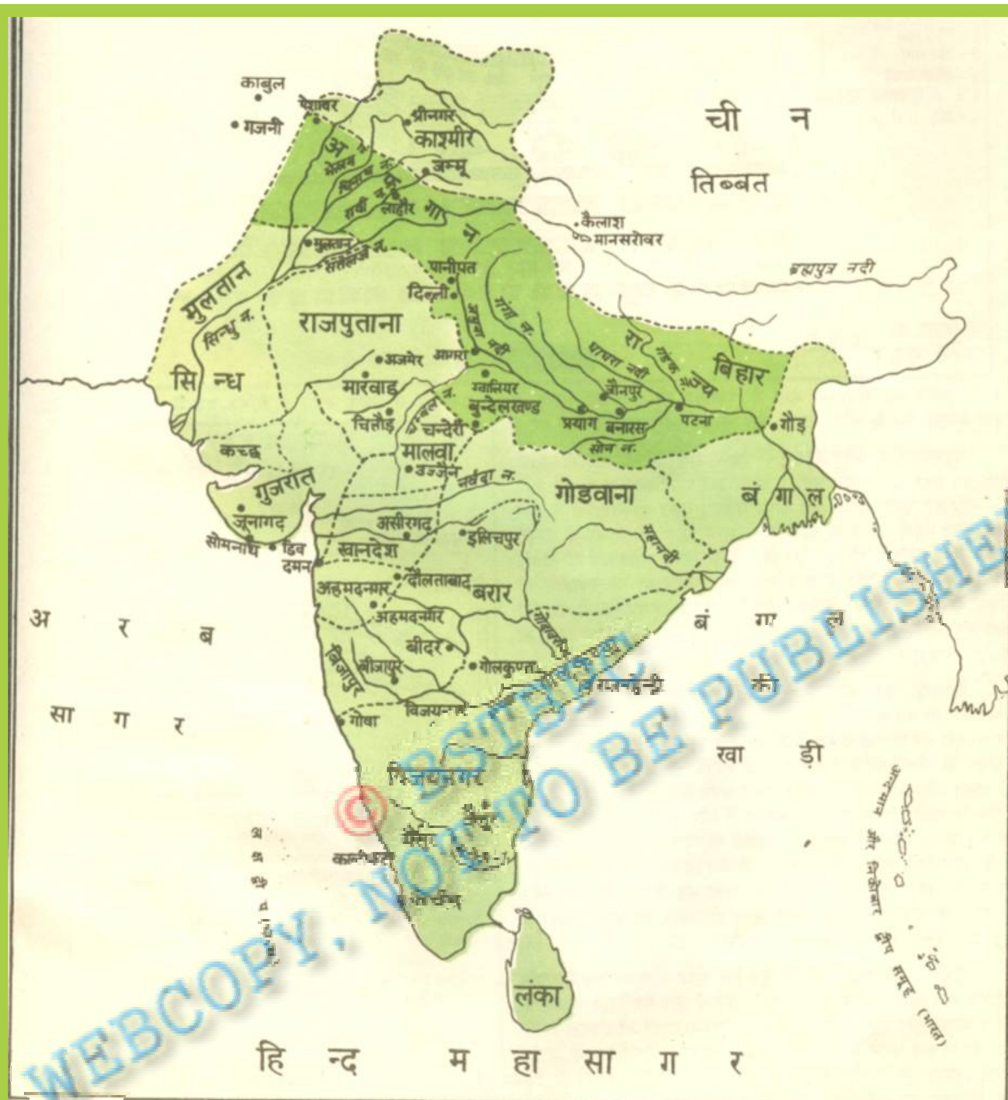

© WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

मानचित्र : 4 इब्राहिम लोदी का राज्य

4. सैय्यद वंश (**1414 से 1451 ई.**)
ख़िज्र खाँ (1414 से 1421 ई.)

5. **लोदी वंश** (1451 से 1526 ई.)
बहलोल लोदी (1451 से 1489 ई0)
इब्राहिम लोदी (1517 से 1526 ई0)

तुर्क शासन की स्थापना

पिछले अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि मुहम्मद गौरी नाम के तुर्क आक्रमणकारी ने पंजाब और मुल्तान से लेकर सम्पूर्ण गंग–यमुना दोआब के प्रदेशों पर अधिकार जमाने में सफलता पाई। उसने अपने एक गुलाम सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत के प्रदेशों की देखभाल के लिए नियुक्त किया।

> गंगा जमुना दोआब: गंगा एवं जमुना नदियों के बीच की भूमि

1206 ई0 में मुहम्मद गौरी की मृत्यु हो गई। तब उसके प्रमुख गुलाम अधिकारियों ने उसके राज्य को आपस में बाँट लिया। इस तरह से कुतुबुद्दीन ऐबक को सिंध एवं मुल्तान के अतिरिक्त शेष भारतीय प्रांतों का नियंत्रण प्राप्त हुआ। परन्तु तुर्क राज्य को भारत में वास्तविक रूप से स्थापित करने का श्रेय इल्तुतमिश (अल्तमश) को प्राप्त हुआ, इसने मध्य एशिया से संबंध विच्छेद कर उत्तरी भारत में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और सुल्तान की उपाधि खलीफा से प्राप्त की। उसके उत्तराधिकारियों में रज़िया सुल्तान, जो उसकी बेटी थी, एकमात्र महिला सुल्तान होने के कारण विशिष्ट महत्व रखती है। किन्तु उसका शासनकाल विफलता में समाप्त हुआ है। तुर्क राज्य को सुदृढ़ स्थिति प्रदान करने का काम बलबन द्वारा किया गया। इन शासकों को ममलूक भी कहा जाता है क्योंकि ये सुल्तानों के गुलाम (ममलूक) के रूप में कार्यरत रहे थे। चूँकि इनकी सत्ता का केन्द्र दिल्ली था अतः उनके राज्य को 'दिल्ली सल्तनत' कहा जाता है।

तुर्क राज्य का विस्तार

मानचित्र 2 पर नजर डालें और पहचान करें कि प्रारंभिक तुर्क शासकों के राज्य की सीमा कहाँ तक फैली हुई थी? 1290 ई0 में एक खिल्जी सेनानायक ने ममलूक वंश के अंतिम सुल्तान कैकुबाद को दिल्ली की गद्दी से हटाकर एक नये राजवंश खिल्जी वंश की स्थापना की। इस वंश के सबसे प्रसिद्ध सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने तुर्क राज्य की सीमा को बढ़ाने के लिए सैनिक अभियान चलाये। उसने गुजरात, मालवा, रणथंभौर तथा चित्तौड़ की लड़ाई में सफलता पाई। अपने गुलाम मलिक काफूर के नेतृत्व में एक विशाल सेना दक्षिण भारत भी भेजी। उसने देवगिरि, वारंगल, द्वारसमुद्र, मदुरई पर विजय हासिल की (मानचित्र 5 देखें)। चूँकि दक्षिण भारत के ये राज्य दिल्ली से बहुत दूर थे इसलिए अलाउद्दीन खिल्जी ने पराजित राजाओं को वार्षिक कर देने के बदले उन्हें शासन करने की अनुमति दे दी। अलाउद्दीन खिल्जी के विपरीत मुहम्मद बिन तुगलक ने दक्षिण के राज्यों को युद्ध में परास्त कर सीधे अपने नियंत्रण में लिया। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में तुर्क राज्य की सीमा अपनी चरम पर पहुँच चुकी थी (मानचित्र 3 देखें)। इसी के साथ इतने बड़े साम्राज्य की उसने रक्षा की और पश्चिमोत्तर सीमांत पर मंगोल आक्रमणकारियों को निर्णायक ढंग से हराया परन्तु

मानचित्र : 5 अलाउद्दीन खिलजी का सैनिक अभियान

WEBCOPY, © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

उनका नियंत्रण किस सीमा तक प्रभावी था ?आइए आगे देखते हैं। तालिका 1 को देखें। आप पायेंगे कि तुगलक वंश के बाद 1526 ई0 तक दिल्ली और आगरा पर सैयद वंश एवं लोदी वंश के शासकों ने राज्य किया।

(1) मानचित्र 2,3,4 को देखकर बतायें कि तुर्क राज्य का विस्तार किस सुल्तान के समय में सबसे अधिक हुआ और इसका विस्तार कहाँ तक था ?

(2) मानचित्र–5 को देखकर अलाउद्दीन खिलजी के राज्य विस्तार को कालक्रम के अनुसार क्षेत्रों की सूची बनाएँ ?

दिल्ली के सुल्तान शासन कैसे चलाते थे ?

दिल्ली सल्तनत का विस्तार भारतीय उपमहाद्वीप के एक बड़े क्षेत्र में हो गया था। इस पर नियंत्रण रखने के लिए दिल्ली के सुल्तानों को सूबेदार, सेनापति एवं प्रशासकों की जरूरत पड़ी थी। इन सभी अधिकारियों को फारसी भाषा में 'अमीर' कहा जाता था, जो सल्तनत काल में मुख्य शासक वर्ग के रूप में स्थापित थे। दिल्ली के प्रारंभिक तुर्क सुल्तानों ने अपने विश्वसनीय एवं योग्य गुलामों को ऊँचे प्रशासकीय पदों एवं सेनापति के रूप में नियुक्त किया था। इन गुलामों को खरीदकर बड़ी सावधानी से सैनिक एवं प्रशासकीय कार्यों के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। वे गुलाम अपने मालिक (सुल्तान) के प्रति पूर्ण रूप से निर्भर एवं वफादार थे।

खिल्जी एवं तुगलक शासक भी गुलामों का उपयोग करते रहे। लेकिन उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों को भी ऊँचे राजनीतिक पद प्रदान किए इनमें भारतीय मुसलमान, हिन्दू, जैन, अफगान, अरब आदि शामिल थे। इससे राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न होने लगी। इतिहासकार बरनी शोक प्रकट करते हुये लिखता है कि मुहम्मद बिन तुगलक ने निम्न कुल में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को ऊँचे पद प्रदान कर दिये हैं। परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि ऐसे सभी लोग सक्षम और योग्य व्यक्ति थे और उनकी नियुक्ति तर्क संगत थी, यह बरनी की व्यक्तिगत पूर्वाग्रह है जिसके कारण वह सुल्तान की आलोचना करता है। मध्ययुगीन समाज में इस प्रकार के पूर्वाग्रह का होना आश्चर्यजनक भी नहीं है क्योंकि लोगों की सोच अत्यंत संकुचित थी।

1. बरनी ने सुल्तान की आलोचना क्यों की थी ?
2. अमीर के रूप में किस वर्ग के लोग शामिल थे ?
3. अमीरों की नियुक्ति किन पदों पर की जाती थी ?

अमीर वर्ग के लोग अपने सुल्तान के प्रति वफादार तो रहते थे, लेकिन उनके उत्तराधिकारियों के प्रति नहीं। सामान्यतः शासक बदलने के साथ उसके अमीर या अधिकारी और सेनानायक भी बदल जाते थे। फलस्वरूप नये और पुराने अमीरों के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती थी। कुछ अमीर तो इतने शक्तिशाली होते थे कि वे सुल्तान तक बन जाते थे। इस प्रकार सुल्तान का पद अमीरों की महत्वाकांक्षा के सामने सुरक्षित नहीं था। अमीर यह विश्वास रखते थे कि उनको भी शासन करने का समान अधिकार था।

WEBCOPY, NOT TO BE REPUBLISHED

केन्द्रीय प्रशासन

अब हम दिल्ली के सुल्तानों के शासन करने के तरीके के बारे में पढ़ेंगे। हम यह जान–चुके हैं कि अमीरों की नियुक्ति प्रशासनिक पदों पर की जाती थी। सुल्तान अमीरों के सहयोग से शासन चलाने का काम करते थे।

केन्द्रीय प्रशासन में वित्त–विभाग (विजारत) में 'वजीर' का स्थान महत्वपूर्ण था। उसके कार्य थे– राजस्व (कर) वसूल करना, आय–व्यय पर नियंत्रण रखना, वेतन बाँटना, अक्ता देने की व्यवस्था करना। अन्य पदाधिकारियों में आरिजे ममालिक (सुल्तान की सेना का प्रबंधक) वकील–ए–दर (राजपरिवार की देखरेख करना), काजी (मुख्य न्यायाधीश), दीवान–ए–इंशा (राजकीय फरमान जारी करने वाला), बरीद–ए–मुमालिक (गुप्त रूप से सूचना एकत्र करने वाला) शामिल थे।

अक्ता व्यवस्था

दिल्ली के तुर्क शासकों ने अपने अमीरों को भिन्न–भिन्न आकार के इलाकों में नियुक्त किया था। ये इलाके 'अक्ता' कहलाते थे और इसके अधिकारी 'मुक्ती' या 'वली' कहे जाते थे। इनका दायित्व अपने अक्ता में कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना, आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान को सैनिक मदद देना तथा भूमि कर की वसूली करना था। ये अधिकारी अपनी सेवा के बदले में वेतन के रूप में राजस्व वसूली का एक निर्धारित भाग अपने पास रख लेते थे जिससे वे अपने सैनिकों को वेतन दिया करते थे। बचे हुये अतिरिक्त राजस्व को सरकारी खजाने में भेज देते थे। मुक्ती लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए उन्हें कोई भी अक्ता थोड़े थोड़े समय के लिए दिया जाता था, ताकि उनका पद अनुवांशिक न बन जाए। कुछ अंतराल के बाद उनका स्थानांतरण एक अक्ता से दूसरे अक्ता में किया जाता था। मुक्ती द्वारा वसूल किये गये राजस्व का बड़ी सावधानी से हिसाब रखने के लिए आमिल नामक लेखा अधिकारी अक्ताओं में रखे जाते थे। उन्हें सख्ती से हिदायत दी जाती थी कि वे राज्य द्वारा निर्धारित कर ही वसूलें। यह अक्ता व्यवस्था प्रांतीय प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करता था।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

मुक्ती के अधिकार

निजाम–उल–मुल्क की रचना सियासतनामा के अनुसार–

"उन्हें (मुक्ती) यह समझना चाहिए कि प्रजा (किसानों) पर उनका अधिकार केवल शांतिपूर्ण तरीके से उचित धन (भूमि कर) अथवा प्राधिकार (माल–ए–हक) वसूल करने का है....... प्रजा के जीवन, सम्पत्ति और परिवार को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहिए, मुक्ती को उन पर कोई ऐसा अधिकार नहीं है, अगर प्रजा सुल्तान से सीधे कोई आवेदन या प्रार्थना करना चाहती है तो मुक्ती को उन्हें रोकना नहीं चाहिए। जो मुक्ती इन नियमों का उल्लंघन करें उसे बर्खास्त और दंडित करना चाहिए.....मुक्ती और वली उन (प्रजा) पर उसी प्रकार नियंत्रक है जैसे कि शासक अन्य मुक्तियों पर नियंत्रण रखता है......तीन या चार वर्ष बाद आमिल और मुक्ती का स्थानांतरण कर देना चाहिए ताकि ये स्थानीय स्तर पर अधिक शक्तिशाली न हो जाए।"

*** अक्ताओं में मुक्ती एवं आमिल के क्या अधिकार एवं दायित्व थे ?**

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

स्थानीय प्रशासन

समकालीन स्रोतों में 'शिक' नामक एक प्रशासनिक इकाई का वर्णन मिलता है। 'शिकदार' (राजस्व अधिकारी) एवं फौजदार (सैनिक अधिकारी) शिक से जुड़े पदाधिकारी थे। ये अपने इलाके में शांति व्यवस्था कायम करने का काम करते थे। साथ ही राजस्व की वसूली भी इनके द्वारा की जाती थी।

चौधरी, लगभग एक सौ गाँवों का प्रधान होता था। बाद के समय में यह 'परगना' नामक प्रशासनिक इकाई का केन्द्र बना। गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँव के प्रमुख अधिकारी खुत, मुकद्दम एवं पटवारी थे। पटवारी लेखा पदाधिकारी होता था, जो गाँव की भूमि एवं लगान का लेखा जोखा रखता था। गाँवों में ग्राम पंचायतें झगड़ों का निपटारा करता था।

मंगोलों का खतरा

1219 ई0 में मंगोलों ने चंगेज खाँ के नेतृत्व में ट्रान्स ऑक्सियाना (उजबेकिस्तान) पर हमला किया। इसके शीघ्र बाद ही दिल्ली के तुर्क राज्य को उनका आक्रमण झेलना पड़ा। अलाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद–बिन–तुगलक के शासन काल में दिल्ली पर मंगोलों के आक्रमण बढ़ गये। इससे मजबूर होकर दोनों सुल्तानों को एक विशाल सेना खड़ी करनी पड़ी। इतनी बड़ी सेना को संभालना प्रशासन के लिए कई चुनौती थी। इस चुनौती का सामना दिल्ली के सुल्तानों ने कैसे किया, आगे देखते हैं।

सैनिक प्रशासन

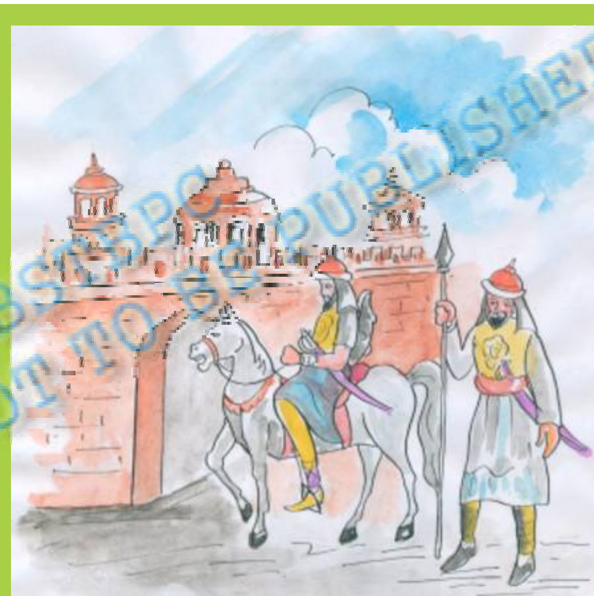

सल्तनत कालीन सैनिक

WEBCOPY BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

सैनिक विभाग (दीवान ए अर्ज) का प्रमुख अधिकारी 'आरिज ए मुमालिक' था। यह सैनिकों की भर्ती, निरीक्षण एवं वेतन देने का कार्य करता था। दिल्ली के तुर्क सुल्तानों ने विशाल सेना का निर्माण किया था और इसकी देख रेख पर विशेष ध्यान देते थे। अलाउद्दीन खिलजी ने सेना की भर्ती एवं देखभाल के लिए कुछ नियम बनाये थे। उसने सैनिकों का हुलिया (पहचान चिह्न) रखने पर जोर दिया। उसने यह भी आदेश दिया था कि घोड़ों पर दाग लगाया जाए ताकि निरीक्षण के समय कोई भी सेनानायक गलत तरीके अपनाकर बार बार एक ही घोड़ा न दिखा सके या निम्न कोटि के घोड़े न रखे। प्रारंभिक तुर्क सुल्तानों के समय में घुड़सवार सैनिकों को नकद वेतन के बदले दिल्ली के निकट के गाँवों से भूमिकर वसूलने का अधिकार दिया गया था। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने सैनिकों को नकद वेतन देने की शुरुआत की। उसके समय में एक घुड़सवार

सैनिक को 234 टंका प्रति वर्ष वेतन मिलता था। जो सैनिक एक अतिरिक्त घोड़ा रखता था, उन्हें 78 टंका और मिलते थे। दिल्ली के सुल्तानों ने मजबूत सैनिक शासन पर ही भारत में एक विशाल तुर्क राज्य की स्थापना की थी।

अलाउद्दीन खिल्जी का मूल्य नियंत्रण

दिल्ली पर बार–बार होनेवाले मंगोल आक्रमण का सामना करने के लिए अलाउद्दीन खिल्जी ने एक बड़ी सेना खड़ी की और उसे नकद वेतन दिया। समकालीन इतिहासकार लिखता है कि–

> "यदि इतनी बड़ी सेना को साधारण वेतन भी दिया जाता तो राज्य का खजाना पाँच या छः वर्ष में ही समाप्त हो जाता। अतः अलाउद्दीन ने सेना के खर्च में कमी करने के लिए सैनिकों के वेतन में कमी की परन्तु उसके सैनिक सुविधापूर्वक रह सकें, इसके लिए उसने वस्तुओं के मूल्य निश्चित किये और उनकी दरें कम कर दीं।"

एक अन्य समकालीन लेखक के अनुसार वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करने में अलाउद्दीन का उद्देश्य अपनी प्रजा को सभी वस्तुएँ उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना था। अलाउद्दीन ने अपने एक अमीर से एक बार कहा था–

> "यदि मैं जनता को धन भी दूँ तो वह प्रसन्न नहीं होगी। इसलिए मैंने खाद्य सामग्री को सस्ता करने का निश्चय किया है और इसका लाभ प्रत्येक तक पहुँचेगा। इस प्रकार अनाज सस्ता कर दिया जाएगा। मैं नगर में अनाज लाने वाले नैगानों (घुमक्कड़ व्यापारियों) को बुला भेजूँगा। अनाज क्रय करने और नगर में लाने हेतु उन्हें कोषागार से धन दूँगा। मैं व्यापारियों को उनके परिवार के भरण–पोषण के लिए वस्त्र और अन्न दूँगा।

सुल्तान ने खाद्यान्नों से लेकर वस्त्रों, दासों, मवेशियों एवं दैनिक जीवन के उपयोग की अन्य वस्तुओं की लागतों को निर्धारित कर दिया। प्रत्येक वस्तु के लिए अलग–अलग बाजार निश्चित किये गये। अनाज के लिए मंडी, कपड़े के लिए सराय–ए–अदल, घोड़ों, गुलामों और पशुओं के लिए पृथक बाजार निश्चित किया गया।

NOT TO BE PUBLISHED

समकालीन साधनों के आधार पर ज्ञात होता है कि अलाउद्दीन ने विभिन्न वस्तुओं की निम्न कीमतें निश्चित की थी–

क्रम.सं०	वस्तु	मूल्य	क्रम.सं०	वस्तु	मूल्य
1.	गेहूँ	7.5 जीतल प्रतिमन	11.	कपड़ा (महीन)	1 टंका 20 गज
2.	जौ	4 जीतल प्रतिमन	12.	घोड़ा (प्रथम श्रेणी)	100 से 120 टंका
3.	चना	5 जीतल प्रतिमन	13.	घोड़ा (द्वितीय श्रेणी)	80 से 90 टंका
4.	चावल	5 जीतल प्रतिमन	14.	घोड़ा (तृतीय श्रेणी)	65 से 70 टंका
5.	घी	आधा जीतल 1 सेर	15.	टट्टू	10 से 25 टंका
6.	नमक	1 जीतल 5 सेर	16.	घरेलू दासी	5 से 12 टंका
7.	मिसरी	2 जीतल 1 सेर	17.	कुशल दास	20 से 30 टंका
8	शक्कर	1 जीतल 1 सेर	18	मजदूर दास	10 से 15 टंका
9.	गुड़	आधा जीतल 1 सेर	19.	दुधारू गाय	3 से 4 टंका
10.	कपड़ा (मोटा)	1 टंका 40 गज	20.	भैंस	10 से 12 टंका

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

48 जीतल का एक टंका (आज के चांदी के एक रुपये के बराबर) होता था। अलाउद्दीन खिलजी के समय का एक मन आज के लगभग 15 किलोग्राम के बराबर था।

बाजार में अनाज की आपूर्ति करने के लिए किसानों को अपनी उपज **का आधा** भाग भूमि कर के रूप में **देने के आदेश** दिये। किसानों को अपनी **आवश्यकता** से अधिक अनाजों के **सरकारी दर** पर व्यापारियों के हाथों **बेचने को** मजबूर किया गया। अनाज **को गाँवों** से बाजार तक लाने की **जिम्मेवारी** बंजारों को दी गयी। लगान के **रूप में** प्राप्त अनाज को दिल्ली स्थित सरकारी गोदामों में जमा किया जाता था ताकि अकाल के समय बाजार में अनाज की पूर्ति की जा सके। कपड़े के व्यापारियों को बाहर से कपड़ा लाने के लिए अग्रिम धन देने की व्यवस्था की गई। सभी व्यापारियों को एक निश्चित मात्रा में वस्तुएँ लाने एवं बेचने के लिए बाध्य किया जाता था। व्यापारियों को व्यापार में जो हानि होती थी, उसकी भरपाई सरकारी खजाने से की जाती थी।

अपने उपायों को सफल बनाने के लिए सुल्तान ने बाजार नियंत्रक (शहना),

बरीद (खुफिया अधिकारी), मुनांहेयान (गुप्तचर) की नियुक्ति की सुल्तान इन अधिकारियों के माध्यम से बाजार की गतिविधियों से अवगत होता रहता था। जमाखोरी, चोरबाजारी, कम तौलने पर कठोर दंड की व्यवस्था की गई थी। गुप्तचर बाजार में घूम–घूमकर वस्तुओं के क्रय–विक्रय की सूचनाएँ एकत्रित कर सुल्तान को भेजा करते थे।

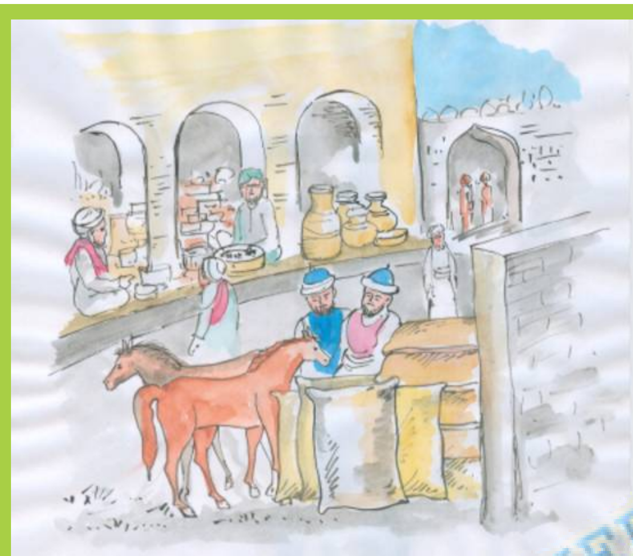

चित्र : 7 अलाउद्दीन खिल्जी के समय का एक बाजार

क्या अलाउद्दीन का यह मूल्य नियंत्रण की व्यवस्था केवल दिल्ली में लागू की गई थी अथवा साम्राज्य के अन्य भागों या शहरों में भी लागू था। इतिहासकार फरिश्ता ने मात्र इतना लिखा है कि वस्तुओं के जो मूल्य दिल्ली में थे, वहीं राज्य के अन्य भागों में भी थे। परन्तु बरनी ने केवल दिल्ली और उसके आस–पास के बाजारों की चर्चा की है। उसने लिखा है कि सुल्तान की नीति और नियमों से अनेक वस्तुएं दिल्ली में सस्ती हो गई थीं और वर्षों तक सस्ती रहीं। वस्तुओं की सस्ती होने और बड़ी मात्रा में उपलब्ध होने के कारण अनेक विद्वान, सेना और कुशल व्यक्ति दिल्ली में आकर बस गये।

आप विचार करें कि अलाउद्दीन खिलजी के मूल्य नियंत्रण की व्यवस्था से जनसाधारण को क्या लाभ हुआ?

भूमि लगान प्राप्त करने के तरीके

तेरहवीं शताब्दी में जब तुर्कों ने भारत में अपना शासन कायम किया तब उन्होंने भूमि लगान वसूलने की पुरानी व्यवस्था को ही प्रचलित रखा। अंतर केवल इतना ही था कि

भूमि की आय पर अधिकार करने वाले लोग बदल गये। पुराने शासक वर्ग (राय, राणा, रावत) के स्थान पर अब तुर्क शासक वर्ग भूमि की आय प्राप्त करने लगा। इतिहासकार हमें बताते हैं कि खुत, मुकद्दम, चौधरी (धनी किसान का वर्ग) राज्य की ओर से किसानों से भूमिकर (खराज) वसूल करते थे। 'खराज' भूमि पर उपजने वाली पैदावार का हिस्सा होता था। ये लोग किसानों से लगान वसूली करके सरकारी कोष में जमा करते थे। इस सेवा के बदले में उन्हें कर का एक हिस्सा मिलता था। सरकारी कर्मचारियों का यह वर्ग स्वयं धनी किसान होते थे। मगर अपनी भूमि पर लगने वाले कर का बोझ वे गरीब किसानों पर डाल देते थे। भूमिकर के अलावा हरेक किसान को गृह कर और पशु कर भी देना पड़ता था।

चित्र : 6 लगान वसूल करते हुए अधिकारी

अलाउद्दीन खिल्जी ने भूमिकर वसूल करने का अधिकार इनसे छीन लिया और राज्य द्वारा किसानों से कर वसूलने का काम सीधे अधिकारियों को दे दिया। उसने दोआब क्षेत्र और खालसा भूमि (सुल्तान के अधीन भूमि) की माप करवाकर उपज का आधा भाग किसानों को भूमिकर के रूप में देने का आदेश दिया। लगान की दर एक समान रखी गई, चाहे वे धनी किसान हो या सामान्य किसान (बलाहर)। इस प्रकार सुल्तान ने धनी किसानों को नुकसान करके अपनी आय तो बढ़ा ली, परन्तु गरीब किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। उनकी स्थिति दयनीय बनी रही क्योंकि उनपर करों का बोझ बढ़ गया था। मुहम्मद तुगलक ने भूमि लगान की दर उपज के आधा भाग से भी अधिक बढ़ा दिया, साथ ही कुछ नए कर भी लगाए। दूसरे करों चराई एवं

©JSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

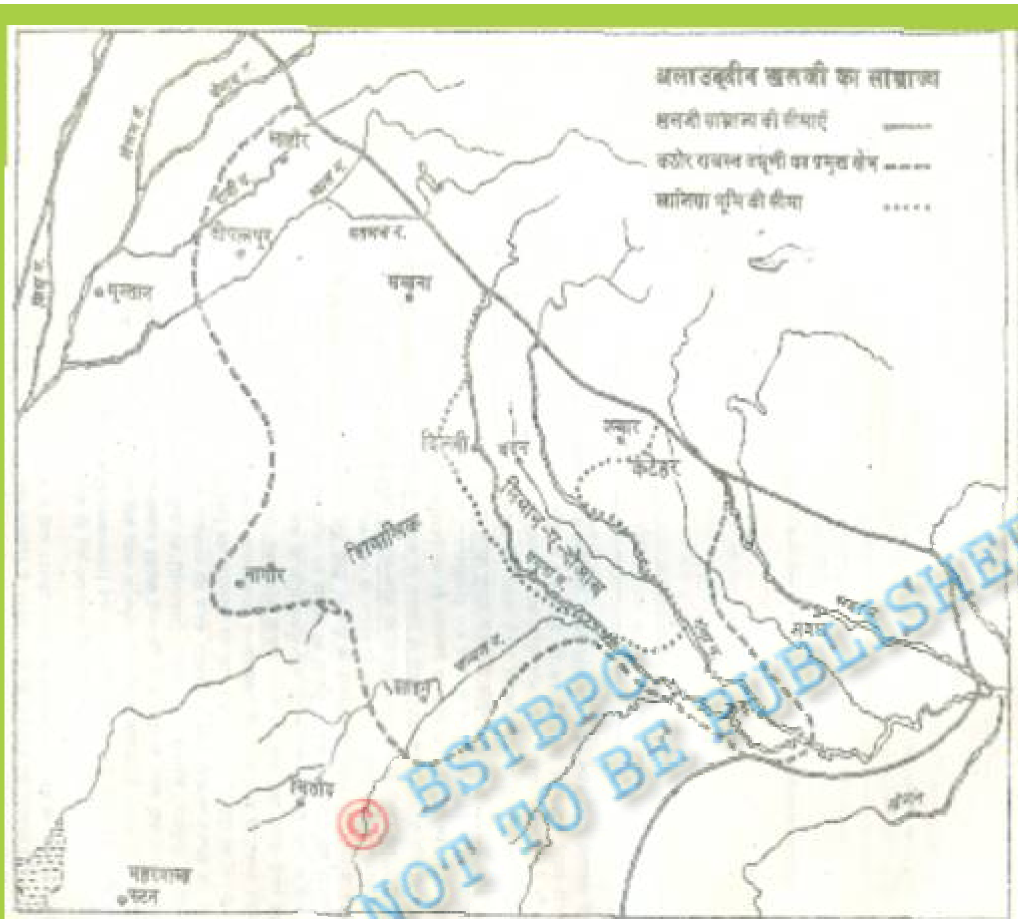

मानचित्र : 9

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

गृह करों को सख्ती से वसूला जाने लगा। इन प्रयासों से किसानों को तबाही का सामना करना पड़ा और वे विद्रोही हो गये।

किसानों का उत्पीड़न

बरनी की रचना तारीख–ए–फीरोजशाही के अनुसार

" सुल्तान... ने सख्ती के साथ राजस्व की माँग की और अनेक प्रकार के अतिरिक्त करों (अबवाब) की बहुतायत से दोआब बर्बाद हो गया। हिन्दुओं ने अनाज के ढेरों में आग लगा कर जला दिया और अपने घरों से जानवरों को भगा दिया। सुल्तान ने शिकदारों और फौजदारों को

आदेश दिया कि पूरे क्षेत्र को उजाड़ दे और लूटमार करें। उन्होंने बहुत से खुत और मुकद्दमों को मार डाला और बहुतों को अंधा कर दिया। जो बच निकले उन्होंने अपने गिरोह बना लिए और जंगलों की ओर भाग गए। पूरा क्षेत्र बर्बाद हो गया। उन्हीं दिनों सुल्तान शिकार खेलने बरन (आधुनिक बुलंदशहर) गया। उसने आदेश दिया कि बरन के सम्पूर्ण क्षेत्र को लूट कर उजाड़ दिया जाए। सुल्तान ने कन्नौज से लेकर वलमऊ तक के सम्पूर्ण क्षेत्र में स्वयं लूटमार की और उजाड़ विया। जो भी पकड़ा गया, मार डाला गया। अधिकांश (किसान) भाग गए और जंगलों में शरण ली। उन्होंने (सुल्तान की सेना ने) जंगलों को घेर लिया और जंगल में जो भी मिला उसे मार डाला।"

* क्या आपको किसानों के उत्पीड़न की ऐसी घटनाएँ सुनने और दिखने को मिला है? कक्षा में चर्चा करें ?

(1) मानचित्र–9 को देखकर बतायें कि खालसा भूमि का विस्तार कहाँ से कहाँ तक था ?

(2) आज के किसानों को कौन–कौन–से कर देने पड़ते हैं ?

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

मुहम्मद बिन तुगलक : एक प्रयोगधर्मी शासक

मुहम्मद तुगलक राजकार्य में नये नये प्रयोग करने वाला सुल्तान था। उस समय के इतिहासकारों ने सुल्तान की कई योजनाओं का विशेष रूप से विवरण दिया। **राजधानी परिवर्तन:–** सुल्तान ने संभवतः 1327 ई0 में देवगिरि को राजधानी बनाने का निर्णय लिया और उसका नाम बदलकर दौलताबाद रखा। उसने दिल्ली के सभी निवासियों को दौलताबाद जाकर रहने का आदेश दिया। सुल्तान ने राजधानी परिवर्तन क्यों किया ? आपने इसके विषय में इकाई 1 के 'इतिहासकार की भूमिका' शीर्षक में इतिहासकार बरनी एवं इसामी के विवरणों को पढ़ा है। आप पाठ के उस भाग को पुनः पढ़ें। इकाई 3 के मानचित्र 3 पर नजर डालिए, इसमें राजधानी परिवर्तन के मार्ग की पहचान करें और बताएँ कि–

1. दिल्ली से दौलताबाद जाने में लोगों को किन–किन क्षेत्रों से होकर गुजरना पड़ा था ?
2. आपके विचार में सुल्तान के राजधानी परिवर्तन का निर्णय उचित था ?
3. आपके अनुसार राजधानी परिवर्तन का कौन–सा कारण उपयुक्त होगा ?
4. राजघानी परिवर्तन के दौरान नागरिकों को किस प्रकार के कष्ट हुये होगें?

खुरासान विजयः– मुहम्मद तुगलक खुरासान (ईरान) को जीतने की योजना बनाई। खुरासान में इलखान मंगोलों का शासन था और अबू सैयद वहाँ का सुल्तान था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक इस देश पर विजय पाने के लिए 3,70,000 सैनिकों की एक विशाल सेना खड़ी की। उसने ट्रांसऑक्सियाना (आधुनिक उजबेकिस्तान) के चगताई मंगोल शासक तरमशरीन और मिस्र के सुल्तान से दोस्ती की।

परन्तु सुल्तान की खुरासान पर विजय पाने की इच्छा सफल नहीं हो सकी क्योंकि मिस्र के सुल्तान और खुरासान के सुल्तान दोनों दोस्त बन गये। दूसरी ओर तरमशरीन को उसके भाई ने गद्दी से हटा दिया। अब सुल्तान के पास इतनी बड़ी सेना को तनख्वाह देने के लिए खजाने में पैसे नहीं थे। अतः सैनिकों को उनके पद से हटा दिया। अचानक हटाये गये बेरोजगार सैनिकों ने डकैती एवं लूटमार करना आरंभ कर दिया तथा वे जनता एवं सरकार दोनों के लिए सिरदर्द बन गये।

सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन– मुहम्मद तुगलक ने अपने सैनिकों को नकद वेतन देने के लिए आज की कागजी मुद्रा की तरह सांकेतिक सिक्के चलाए। ये सिक्के धातु के बने होते थे। लेकिन ये सिक्के उस समय के प्रचलित सोने चांदी के न होकर तांबे जैसी सस्ती धातु से बनाए गये थे। लोगों को इस मुद्रा पर भरोसा नहीं था, क्योंकि सिक्कों की नकल करना आसान था। लोग नकली सिक्के बनाकर तमाम तरह के करों का भुगतान करने लगे और सोने चांदी के सिक्के को बचाकर अपने घरों में जमा करने

WEBCOPY NOT TO BE REPUBLISHED

लगे। किन्तु जब व्यापारियों ने सांकेतिक सिक्के को लेने से इंकार कर दिया, तब सुल्तान को सांकेतिक मुद्रा बंद करनी पड़ी।

आज की सांकेतिक मुद्रा के बारे में शिक्षक से जानकारी प्राप्त करें।

कृषि सुधार: मुहम्मद तुगलक ने कृषि के विस्तार एवं सुधार के लिए योजना बनाई। दीवान–ए–अमीरकोही (कृषि विभाग) नामक नया विभाग बनाया, जिसके जिम्मे में 60 वर्ग मील का क्षेत्र सौंपा गया। उसने उस क्षेत्र में कृषि का विस्तार करने की ऐसी योजना बनाई कि थोड़ी सी जमीन भी खाली न पड़ी रहे। सुल्तान का इरादा बंजर भूमि को खेती के लायक लाने का था। किसानों को बीज, हल, बैल खरीदने एवं कुआँ खुदवाने के लिए 70 लाख टंका की बड़ी रकम कृषि ऋण के लिए मंजूर किया।

परंतु तीन साल तक बंजर भूमि का हजारवाँ भाग भी खेती के लायक नहीं बनाया जा सका। सुल्तान ने जिन अधिकारियों को नियुक्त किया था, वे इस काम को करने के योग्य नहीं थे। अधिकारियों के भ्रष्टाचार के कारण सुल्तान के द्वारा मंजूर किये गये कृषि ऋण का शायद ही कोई अंश किसानों को मिल पाया था। अतः किसान भी इस योजना के प्रति उदासीन रहे।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

***"कृषि सुधार एक सरकारी दायित्व है।" यह बात मुहम्मद तुगलक के समय में उभर कर सामने आई है। क्या आप बता सकते हैं कि वर्तमान सरकार द्वारा किसानों को कृषि के विकास एवं सुधार के लिए क्या सहायता दी जाती है ?**

सल्तनत काल में कृषि उत्पादन

तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में भूमि और व्यक्ति का अनुपात बहुत अनुकूल था अर्थात् काफी मात्रा में भूमि उपलब्ध थी और उसपर खेती करने वालों की संख्या कम। किसानों द्वारा बड़ी संख्या में फसलें उगायी जाती थीं। ठक्कुर फेरू, जो अलाउद्दीन खिलजी के समय में दिल्ली की टकसाल का प्रमुख था, करीब 25 फसलों के नाम गिनाता है। खाने वाली फसलों में वह गेहूँ, धान, मोटे अनाज (जौ, ज्वार, बाजरा) तथा दलहन (उड़द, मूंग, मसूर) का विवरण देता है। नकदी फसलों में वह गन्ना, कपास तथा तेल प्रदान करने वाली फसलों तिल और अलसी के नाम बताता है। नील

के उत्पादन का संकेत इस बात से मिलता है कि ईरान के इलखान शासकों द्वारा अपने देश में नील की खेती को बढ़ावा दिया जा रहा था ताकि भारत पर निर्भरता कम हो सके। मुहम्मद बिन तुगलक किसानों को सलाह दिया करता था कि वे अपनी फसलों में सुधार करें और गेहूँ की जगह गन्ना और गन्ने की जगह अंगूर बोयें। चीनी यात्री माहुआन से बंगाल में रेशम के कीड़े पालने की जानकारी प्राप्त होती है।

नहरों द्वारा सिंचाई

समकालीन स्रोतों से हमें नहरों द्वारा सिंचाई किये जाने का विवरण मिलता है। फीरोजशाह तुगलक द्वारा कई नहरें खुदवाने का काम किया गया था, उसने यमुना नदी से हिसार पानी ले जाने के लिए नहरें बनवाईं। दोआब में काली नदी से एक नहर खुदवाया, जो दिल्ली के पास यमुना नदी से मिलती थी। एक नहर सतलज और घग्घर नदी से निकलवाई। नहरों द्वारा सिंचाई के कारण पूर्वी पंजाब में कृषि का बहुत विस्तार हुआ। भूमि का एक बड़ा भाग, जो लगभग 80 कोस में फैला था, रजवाह और उलुगखानी नामक दो नहरों से सींचा जाता था। इसके नहरों के किनारे 52 कृषि बस्तियाँ बस गईं। एक भी गाँव उजाड़ नहीं रह गया और एक गज भूमि भी ऐसी नहीं बची, जहाँ खेती न होती हो।

© DSERT WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

सल्तनत काल में किसानों का जीवन

सल्तनत काल में आबादी का एक बड़ा भाग किसानों का था, जो गाँवों में रहता था। एक गाँव में लगभग 200 से 300 लोग रहते थे। किसानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से खेती का काम किया जाता

चित्र : 10 खेत जोतता हुआ किसान (मिफ्ता–उल–फुजाला 1450 ई०)

था। भिन्न–भिन्न आकार की भूमि पर किसानों का स्वामित्व था। एक ओर तो बड़े भूमि के भागों के मालिक खुत, मुकद्दम एवं चौधरी थे। जबकि दूसरी ओर भूमि के छोटे–छोटे टुकड़ों का स्वामी 'बलाहर' किसान थे, जो गाँव में निम्न कोटि का माना जाता था। किसानों के नीचे भूमिहीन निम्न जातियों का एक समूह रहा होगा, परंतु इनके विषय में कम जानकारी मिलती है।

किसान खेती के औजारों के स्वयं मालिक थे। किसानों के पास आमतौर पर एक जोड़ा बैल और हल होता था। साधारण किसान फूस की छप्पर वाली मिट्टी की झोपड़ियों में रहते थे, जिन्हें बाँसों पर टिकाया जाता था। इनके घर जाड़े, बरसात एवं गर्मी से बचने की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करते थे। वे खाना पकाने एवं खाने के लिए मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल करते थे। खुत एवं मुकद्दम किसान थे। परंतु ऐसे किसान जो ग्रामीण उच्च वर्ग की दहलीज पर खड़े थे जब वह संपन्न हुए तब उन्होंने अपने से ऊँचे लोगों के तौर–तरीकों की नकल आरंभ की, जैसे– घुड़सवारी करना, अच्छे कपड़े पहनना और पान खाना। संपन्न किसानों के घरों की मुख्य इमारत के चारों तरफ खाली जमीन हुआ करती थी। इमारत के साथ एक से अधिक कमरे, आँगन, चबूतरा होता था। दीवारें चित्रकारी से सजी होती थीं। उनके रहने के स्थान के चारों तरफ सब्जी, फूल और फल का बगीचा हुआ करता था।

*** सल्तनत काल में साधारण किसान एवं धनी किसान में आप क्या अंतर देखते हैं ?**

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

अभ्यास

फिर से याद करें :

1. दिल्ली की स्थापना किस राजवंश के काल में हुई?
2. अलाउद्दीन खिलजी के समय में किस गुलाम सेनानायक ने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी ?
3. मूल्य नियंत्रण की नीति किस सुल्तान ने लागू की थी ?

4. दिल्ली के किस सुल्तान ने नहरों का निर्माण करवाया था ?

5. मिलान करें–

राजवंश	संस्थापक
(क) प्रारंभिक तुर्क वंश	(i) खिज्र खाँ
(ख) खिल्जी वंश	(ii) गयासुद्दीन
(ग) तुगलक वंश	(iii) बहलोल
(घ) सैयद वंश	(iv) जलालुद्दीन
(ङ) लोदी वंश	(v) कुतुबुद्दीन ऐबक

आइए समझें :

6. दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत अक्तादारी व्यवस्था पर प्रकाश डालें।

7. सल्तनत काल में लगान व्यवस्था का वर्णन करें और बताएँ कि किसानों के जीवन पर इसका क्या प्रभाव था ?

8. दिल्ली के सुल्तानों की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यरत अधिकारियों की सूची बनाएँ और उनके कार्यों का उल्लेख करें।

9. सल्तनत काल में उपजाई जाने वाली अनाजों को खरीफ एवं रबी फसलों में बाँटकर समझायें।

आइए विचार करें :

10. अलाउद्दीन खिल्जी के मूल्य नियंत्रण पर प्रकाश डालते हुए विचार करें कि क्या वर्तमान समय में सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर वस्तुओं की बिक्री की कोई योजना कार्य कर रही है ?

11. सल्तनत कालीन किसानों एवं आज के किसानों में आप क्या समानता एवं

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED ©BSTBPC

अर नानता देखते हैं ?

आइए करके देखें:—

12. मुहम्मद बिन तुगलक की योजनाओं को रेखांकित करते हुये उसकी असफलताओं के कारणों को ढूंढें

योजना का नाम	कारण	असफलता का कारण
राजधानी परिवर्तन		
खुरासान विजय		
सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन		
दोआब में कर वृद्धि		
कृषि सुधार		

© BSTBPC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

www.absol.in

4

मुगल साम्राज्य

बच्चे आपस में अकबर–बीरबल से जुड़े लतीफों को एक दूसरे को सुनाकर मनोरंजन कर रहे थे। इन दोनों से जुड़ी मजेदार कहानियाँ आम प्रचलन में रही हैं इसलिए बच्चे इन दोनों नामों से परिचित थे। सहसा कुछ बच्चों के मन में इन दोनों के विषय में जिज्ञासा पैदा हुई क्योंकि अभी तक ये दोनों चरित्र बच्चों के लिए कहाँनियों के काल्पनिक पात्र ही थे।

BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

आपने इकाई तीन में सल्तनत काल के राजा (सुल्तान) और राजवंशों के बारे में पढ़ा है। इस काल का आखरी महत्वपूर्ण राजा फिरोजशाह तुगलक था जिसके मरने के साथ ही सल्तनत में बिखराव और कमजोरी आने लगी। राजा का नियंत्रण अपने शासन क्षेत्र पर से ढीला पड़ने लगा। इसी क्रम में तुर्क आक्रमणकारी तैमूर ने (1398–99) भारत पर आक्रमण कर दिल्ली सल्तनत की रही–सही प्रतिष्ठा भी समाप्त कर दी। इस आक्रमण के बाद अफगानों ने अवसर पाकर दिल्ली सल्तनत का शासन अपने हाथ में ले लिया। सल्तनत का आखरी राजवंश इन्हीं अफगानों में से एक समूह, लोदियों द्वारा स्थापित किया गया था। इसके समय में दिल्ली सल्तनत का नियंत्रण आगरा–दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों तक सीमित हो गया था। सल्तनत की इस कमजोरी का लाभ उठाकर कर भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में कई राज्य बन गए। इनमें गुजरात, बंगाल, जौनपुर, मालवा, दक्षिण भारत के राज्य और राजपूताना में मेवाड़ का राज्य प्रमुख था। ये सभी राज्य आपस में लड़ते रहते थे इनमें सबों की इच्छा दिल्ली पर अधिकार करने की थी, क्योंकि वह अभी भी राजनैतिक

इकाई 3 के तालिका 1 पर नजर डालिए एवं मानचित्र 4 को देखकर लोदियों के राज्य क्षेत्र को चिह्नित करें

शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीक था। वस्तुतः दिल्ली सल्तनत काल में लगभग 300 वर्षों तक राजधानी रही थी। यहाँ से भारतवर्ष के अधिकांश हिस्से पर शासन किया जाता था। इसलिए यह शहर एक तरह से भारत का सबसे महत्वपूर्ण शहर था।

बाबर

इन छोटे राज्यों में ही बिहार में नूहानी अफगानों का शासन था। इस राज्य के अधीन फरीद या शेर खाँ का सासाराम पर नियंत्रण था। वह अपनी योग्यता के बदौलत नूहानी राजाओं के काफी करीब आ गया था। धीरे–धीरे शेर खाँ ने बिहार में अपने को प्रभावी बनाया और आगे नूहानी शासकों के स्थान पर स्वयं बिहार का शासक बन गया। बिहार के इस बदलाव से पड़ोसी बंगाल के अफगान शासकों के साथ शेर खाँ की संघर्ष की स्थिति बन गई। बंगाल के शासक शेर खाँ के इस बढ़ते प्रभाव से चिंतित थे। 1538 ई0 में दोनों के बीच युद्ध हुआ, इसमें शेर खाँ की जीत हुई। इसके साथ ही वह भारत का सबसे शक्तिशाली अफगान शासक बन गया।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

लगभग इसी समय काबुल और कंधार के शासक बाबर के भारत पर आक्रमण हुए। बाबर स्वयं इस समय के हिन्दुस्तान के विषय में अपनी आत्मकथा में लिखता है कि जब उसने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की उस समय सारा हिन्दुस्तान किसी एक शासन के अधीन नही था. अर्थात् यहाँ अनेक छोटे–छोटे राजा राज्य करते थे और उनमें से प्रत्येक अपने को सम्राट समझता था। आपने निरंतर भारत पर होने वाले विदेशी आक्रमणकारियों के विषय में पढ़ा है। वस्तुतः भारत पर बाहरी लोगों द्वारा आक्रमण हमेशा उत्तर–पश्चिम सीमा से होता आया था क्योंकि उस क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिए शासकों द्वारा कभी भी ध्यान नही दिया गया। बाबर भी उसी रास्ते से भारत आया। वह अपने छोटे राज्य को बढ़ाने और भारत की सम्पदा एवं धन–दौलत के विषय में सुनकर आया था।

भारत में मुगल राज्य की नींव– 1526 में बाबर अपनी घुड़सवार सेना, तोप (जिसका उपयोग भारत में नहीं हो रहा था) बंदूक **तथा घुड़सवार तीर अंदाज एंव आक्रमक युद्ध** शैली के साथ पानीपत पहुँचा। यहाँ दिल्ली के अफगान शासक इब्राहिम लोदी के साथ उसका संघर्ष हुआ। इसमें बाबर की जीत हुई। बाबर के सहयोगी, जीत के बाद धन लूट कर वापस लौटना चाहते थे. लेकिन उसने उन्हें समझाकर हिन्दुस्तान में रहने के लिए राजी कर लिया। इस जीत के बाद बाबर ने कई ताकतवर अफगान सरदारों और महत्वपूर्ण राजपूत राजाओं को एक–एक कर पराजित करते हुए अपने नए राज्य को भारत में स्थापित किया। इस क्रम में उसने 1527 में चित्तौड़ के शासन राणा सांगा, 1528 में चन्देरी के शासक मेदिनी राय और 1529 में पूर्वी भारत के अफगानों को पराजित किया।

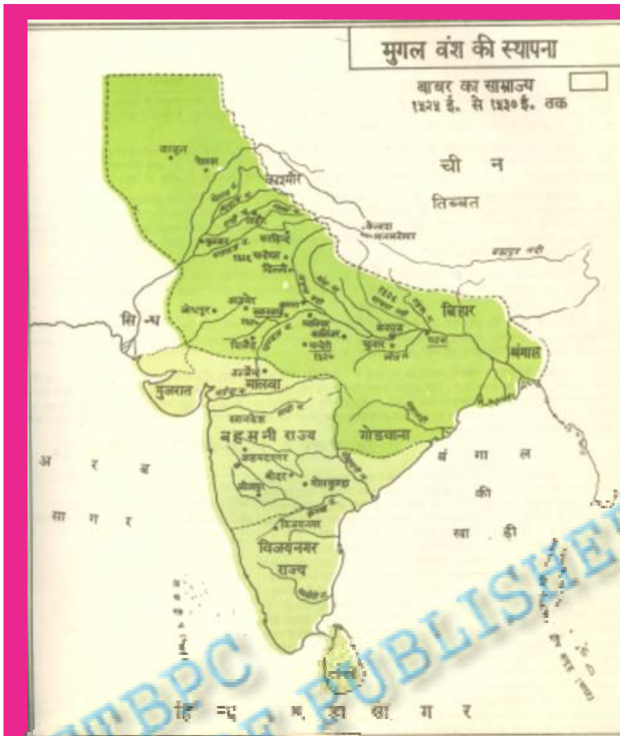

मुगल कौन थे ?
exy tkfr ls rdh vkj nk
egku e/; ,f'k;kbZ egRoi.kZ
jktoa'kks ds o'kt FksA
ekrk dh vkj ls exky 'kkld
pxst [kku ds mÙkjkf/kdkjh] firk
dh vkj ls rSewj ds o'ktA
yfdu os viu dks rSewj ds]
o'kt gh dgk djrs Fks D;kfd
mudk egku iwoZt rSewjyx us
1398 esa fnYyh ij vf/kdkj
fd;k FkkA

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

शेर खाँ का मुगलों के साथ संबंध—शेर खाँ कुछ दिनों तक बाबर के अधीन मुगलों की सेवा में भी रहा। वहाँ उसने मुगलों के कार्यकलापों को बारीकी से देखा, जिससे उसे निराशा हुई। उसने इसके बाद अपना पूरा ध्यान बिहार में अपने शासन को मजबूत बनाने पर दिया। उसने यहाँ अपने को मजबूत बनाते हुए मुगल बादशाह से सीधी लड़ाई के लिए तैयारी भी की।

vQxku vkj
exy l?k"k d
dkjd D;k jg

हुमायूँ तथा मुगल–अफगान संघर्ष— बाबर अपने राज्य को बिना व्यवस्थित किए 1530 में मर गया। उसका बड़ा लड़का हुमायूँ बादशाह बना। उसको शुरू से ही भारत में शासन कर रहे राजवंशों के शक्तिशाली विरोध का सामना करना पड़ा। सबसे प्रबल विरोध अफगानों की तरफ से हुआ क्योंकि अफगान उस समय भारत में सबसे शक्तिशाली थे। उनका शासन भारत के कई हिस्से में फैला हुआ था। अफगान विरोध का केन्द्र बिहार था।

यहाँ शेर खाँ की लगातार प्रगती को देखकर हुमायूँ ने सबसे पहले बंगाल को जिस पर शेर खाँ का अधिकार हो गया था, जीतने का प्रयास किया। इसमें उसे सफलता भी मिली। शेर खाँ ने हुमायूँ के बंगाल अभियान को नहीं रोका। मुगल बादशाह आठ महीनों तक वहाँ रहा। इस बीच शेर खाँ अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए बिहार के अतिरिक्त चुनार, बनारस, जौनपुर, कन्नौज को अपने अधिकार में कर लिया। इस तरह उसने हुमायूँ के आगरा लौटने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। आगरा में हुमायूँ के भाइयों द्वारा राज्य प्राप्त करने के प्रयास के कारण उसे वापस लौटना पड़ा। इसी क्रम में चौसा और कन्नौज नामक स्थानों पर हुमायूँ और शेर खाँ के बीच लड़ाइयाँ हुईं । इसमें शेर खाँ सफल रहा और इस प्रकार उसने भारत में एक बार फिर अफगान राज्य को स्थापित किया। मुगल अफगान संघर्ष के इस दौर में अफगानों की जीत का पूरा श्रेय शेर खाँ के सफल कूटनीति को जाता है।

शेरशाह

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

शेरशाह का शासन– शेर खाँ ने राजा बनने के बाद शेरशाह की उपाधि धारण की, उसने अपने पूरे राज्य में कानून और व्यवस्था स्थापित की। क्योंकि मुगल और अफगान संघर्ष के कारण भारत का एक बड़ा क्षेत्र प्रशासनिक रूप से अस्थिर हो गया था। उसने स्थानीय जमींदारों से वसूल की गई लगान को भी सख्ती से प्राप्त किया। जमींदारों को किसानों से निर्धारित दर से अधिक लगान नहीं वसुलने की आज्ञा दी गई। शेरशाह के पहले किसानों से वसुली गई लगान को वे राजा के पास नहीं भेजते थे। भूराजस्व निर्धारण के लिए एक तरीका अपनाया गया जिसके तहत उपज की अलग–अलग किस्मों पर राज्य को मिलने वाले लगान की दर अलग–अलग तय की गई। राजस्व की दर उपज का एक तिहाई थी। बुआई का क्षेत्रफल फसल की किस्म और किसान द्वारा देय कर एक पट्टे पर लिख लिया जाता था। सूखा या अकाल के समय लगान माफ था, संकट के समय कुएँ खुदवाने के लिए किसानों को धन उधार दिया गया तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए नहरों का निर्माण भी करवाया गया।

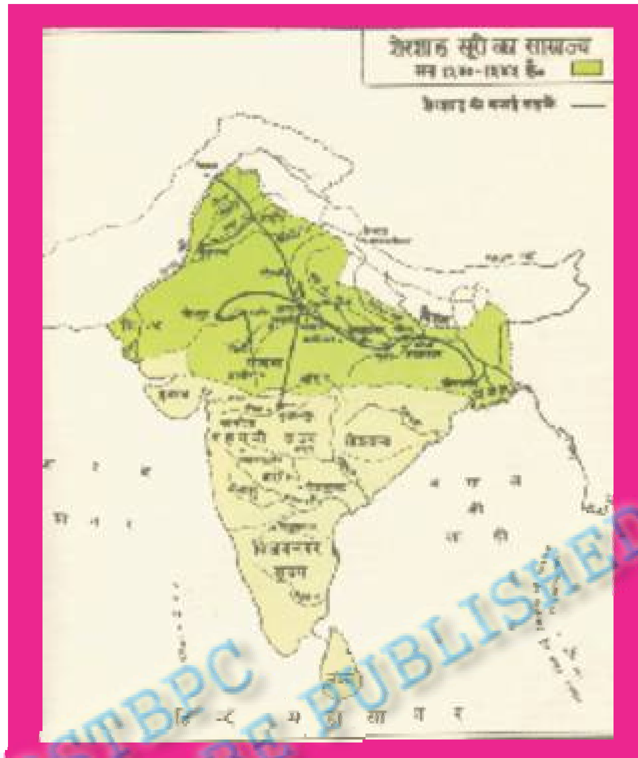

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

शेरशाह ने व्यापार के विकास पर भी पूरा ध्यान दिया। व्यापारियों से अच्छा व्यवहार करने का सख्त आदेश उसने अपने अधिकारियों को दिया था। व्यापारियों से पूरे राज्य में मात्र दो ही जगह कर लिया जाता था। चूँकि शेरशाह को अपने नये राज्य को मजबूत करने के लिए पैसों की जरूरत थी। व्यापार से आय हो सकता था इसलिए उसने व्यापार की उन्नति पर पूरा ध्यान दिया।

शेरशाह ने व्यापार के विकास के लिए ही यातायात के साधनों को उन्नत बनाया। पुरानी सड़कों की मरम्मत करवाई एवं कुछ नई सड़कों का निर्माण भी। सड़कों के किनारे प्रत्येक आठ किलोमीटर पर लोगों और व्यापारियों के विश्राम के लिए सरायों का निर्माण करवाया जहाँ हिन्दू और मुस्लमान दोनों कर्मचारी रहते थे। व्यापार का विकास हो सके इसके लिए व्यापारियों से लिये जाने वाले कर को फिर से तय किया गया। सरायों के आसपास गाँवों या छोटे शहरों को बसाया गया। आज भी आपको कई गाँवों एवं शहरों के नाम में सराय मिल जाएगा जैसे–मुगलसराय, दलसिंहसराय, बेगुसराय इत्यादि।

दैनिक प्रशासन की व्यवस्था में शेरशाह ने सल्तनत काल में प्रचलित व्यवस्था को ही बनाए रखा। इसके विषय में आप अध्याय तीन में पढ़े होंगे। शेरशाह ने केवल उसे प्रभावी बनाया। इस प्रकार यह कहना सही होगा कि शेरशाह का शासन काल मात्र 5 वर्षों का रहा। उसके मरने के बाद ही उसका राज्य भी ज्यादा दिन तक नहीं चल सका। उसके उत्तराधिकारी शेरशाह की व्यवस्था को संभाल नहीं सके। फिर भी कम समय में ही उसने जो कार्य किए तथा जनता पर जितना प्रभाव इन कार्यों का हुआ वह इतिहास में शेरशाह और उसके अफगान राज्य को महत्वपूर्ण स्थान दिलाता है। स्मरणीय है कि इस पूरी प्रक्रिया में बिहार की भूमिका निर्णायक थी। क्योंकि शेरशाह की प्रशासनिक सुधारों की प्रयोगशाला बिहार ही था।

अकबर

©BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

बादशाह अकबर और मुगल राज्य का मजबूत होना–शेरशाह के उत्तराधिकारियों के कमजोर होने के कारण हुमायूँ दिल्ली पर **1555 ई0 में** अधिकार करने में एक बार फिर सफल रहा। परन्तु वह ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रह सका। उसका बेटा

अकबर 13 साल की उम्र में बादशाह बना (1556 ई0) उस समय हिन्दुस्तान में मुगल वंश का राज्य ठीक से जम नहीं पाया था। चारों तरफ से दूसरे राजा मुगलों को खदेड़ने पर तुले थे। अकबर की छोटी उम्र को देखते हुए मुगलों के प्रमुख अधिकारी बैरम खान ने शासन का काम चलाया और अकबर को राजकाज की शिक्षा दी। उसने पहले अपने राज्य को बढ़ाने एवं फिर उसे मजबूत करने का काम शुरू किया। अकबर ने मुगल रज्य को बढ़ाने के लिए कई राज्यों को सैनिक अभियान द्वारा अधिकार में किया। राज्य का आरंभिक विस्तार 1556 से 1576 के बीच हुआ। उन दिनों आज के मध्य प्रदेश के इलाके में दो महत्वपूर्ण राज्य थे। एक राज था मालवा, जहाँ का राजा बाज बहादुर था जिसकी राजधानी माण्डू थी। दूसरा प्रमुख राज्य गढ़ कटंगा 'गोंडवाना' था। 1561 एवं 1562 ई0 में इन दोनों राज्यों पर मुगलों ने अधिकार कर लिया। विजय के बाद मुगल सेनाओं और सेनापति अधम खाँ को बहुत धन प्राप्त हुआ जिसे उसने अकबर के पास नही पहुँचाया। इसका पता चलने पर बादशाह ने कड़ाई से उस धन को प्राप्त किया।

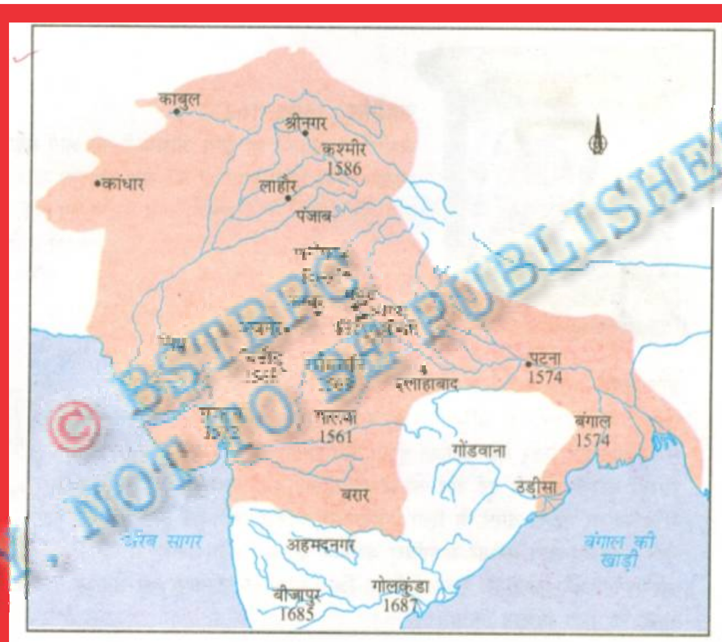

अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य

© BSTBPC WEBCOPY. NOT TO BE PUBLISHED

इसके अगले दस वर्षों तक अकबर ने राजपूताना के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया तथा गुजरात और बंगाल को भी जीत लिया। राजपूत राज्यों में एक महत्वपूर्ण अभियान चित्तौड़ का था। वहाँ महाराणा प्रताप का राज था। उसने अकबर की अधीनता मानने से इन्कार किया और जीवन भर विरोध करता रहा।

यद्यपि उसका दुर्गम किला अकबर द्वारा जीत लिया गया था। चित्तौड़ के बाद दूसरा महत्वपूर्ण राज्य रणथम्भौर को अकबर के द्वारा जीता गया। इन विजयों के बाद अधिकांश राजपूत राज्यों—जैसलमेर, बीकानेर आदि ने अकबर के समक्ष समर्पण कर दिया। इसके बाद अकबर ने गुजरात को अपने अधिकार में किया। यह प्रदेश बाहरी देशों से व्यापार के कारण काफी समृद्ध बन गया था। यह भारत के साथ होनेवाले विदेश व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। मुगलों के नियंत्रण के पश्चात इससे अच्छी आय प्राप्त हो सकती थी। यहाँ की भूमि भी काफी उपजाऊ थी एवं शिल्पकला काफी उन्नत अवस्था में थी। इसलिए अकबर ने इस क्षेत्र को जीतना जरूरी समझा। इसी विजय की याद में अकबर ने बुलंद दरवाजा का निर्माण करवाया। इसके विषय में आप इकाई पाँच में पढ़ेंगे। अकबर का ध्यान भारत के एक अन्य उर्वर क्षेत्र बंगाल पर गया। वहाँ अभी भी अफगानों का राज था। उसके पड़ोसी बिहार पर भी अफगान शासन ही था। 1576 ई0 में एक भीषण युद्ध के बाद अकबर ने इन दोनों प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। यह अफगानों का आखरी राज्य था जिसपर मुगलों का अधिकार हुआ। इन विजयों के पश्चात अकबर ने पश्चिमोत्तर सीमांत को सुरक्षित बनाने पर बल दिया। उसने काबुल और कंधार पर विजय प्राप्त की और अफगान कबायलियों के विद्रोह का दमन किया तदोपरांत दक्षिणी भारत के पठारी क्षेत्रों के राज्यों पर अभियान किया फलस्वरूप खानदेश पूर्णतः और अहमदनगर आंशिक रूप से उसके शासन के अधीन आ गया। 1602 में राजकुमार सलीम के विद्रोह के कारण अकबर को दक्कन का अभियान स्थगित करना पड़ा। 1605 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

मुगल राज्य के अमीर— अकबर जब बादशाह बना तो 51 बड़े अधिकारी या दरबारी थे जो अमीर कहलाते थे। इन्हीं लोगों के जिम्मे मुगल सम्राज्य का काम—काज था। इन अमीरों में अधिकांश तूरानी थे जो बाबर के साथ तुर्किस्तान से आए थे। इनमें कई बादशाह अकबर के रिशतेदार भी थे। इनका पूरा समर्थन बादशाह को नही मिल रहा था। वे अपने को बादशाह के बराबर समझते थे। उनके पास अच्छी जागीर थी जिसका उपयोग वे स्वतंत्र तरीके से करते रहना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि बादशाह सभी मामलों में उनकी बात माने। अकबर को यह बात बिल्कुल पंसद नहीं

> क्या आप सल्तनत कालीन अमीर एवं मुगलकाल के अमीर वर्ग में कोई अंतर देखते हैं?

© BSTBPC
WBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

थी। वह चाहता था कि उसका आदेश सभी लोग माने। अकबर इस स्थिति से निपटने के लिए स्थाई उपाय किया। उसके दरबार में ईरानी अमीर भी थे जो हुमायूँ के साथ भारत आए थे। उसने इन ईरानी अमीरों को बढ़ावा और समर्थन दिया। उससे खुश होकर इन लोगों ने अकबर को पूरा सहयोग दिया। इनका साथ लेकर अकबर ने तुरानी अमीरों को नियंत्रित किया।

हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अमीर बनाने की कोशिश– आगे ऐसी कोई समस्या खड़ी न हो इसलिए अकबर ने कुछ और उपाय किये। उसने हिन्दुस्तानी मुसलमानों को भी अमीर बनाने की कोशिश की। वह जानता था कि राज्य मजबूत बनाने के लिए हिन्दुस्तान के शक्तिशाली और मजबूत लोगों का समर्थन लेना जरूरी होगा। ऐसे दो सामाजिक वर्ग थे। एक राजपूत और दूसरे जमीन और सम्पत्ति वाले मुसलमान परिवार जो कई सदियों से भारत में रह रहे थे। दूसरी बात यह कि बादशाह यह भी सोच रहा था कि अगर वह किसी नए समूह को प्रशासन में शामिल करेगा तो वह समूह हमेशा बादशाह का समर्थन करेगा। इस सोच के साथ उसने भारतीय मुसलमानों को दरबार में ऊँचा स्थान दिया। इस नए वर्ग को वह अपने समर्थन से धीरे–धीरे मजबूत बनाता गया। इसका असर यह हुआ कि ईरानी और तूरानी अमीर दोनों नियंत्रित रहे।

राजपूतों को अमीर बनाने की कोशिश–भारत के इस शक्तिशाली सामाजिक–राजनैतिक वर्ग का समर्थन मुगल शासन को मजबूत बनाने के लिए जरूरी था। अकबर ने यही सोचकर इससे दोस्ती का प्रयास आरंभ किया। राजपूत अपने को स्वतंत्र रखना चाहते थे। उसने राजपूतों को सैनिक विजय और विवाह संबंध की नीतियों को अपनाकर अपने अधीन किया। अकबर ने राजपूत राजाओं के सामने यह बात रखी कि अगर वे उसके अधीन हो जाते हैं तो वह उनके राज्य में उन्हें राज करने देगा और मुगल सम्राज्य में उन्हें अमीर बनाया जाएगा। दूसरे क्षेत्रों में उन्हें जागीर भी दी जाएगी। कुछ राजपूत राज्य इस प्रस्ताव को मानकर मुगल अमीर बन गए। इस तरह अकबर राजपूतों को अपना समर्थक बनाया। उनकी धार्मिक भावनाओं का सम्मान करने के लिए तथा बहुसंख्य हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करने हेतु 1562 ई0 में तीर्थयात्रा कर बंद कर दिया। 1564 में जजिया कर लेना बंद हुआ।

मुगल प्रशासन एवं मनसबदार– मुगल सम्राज्य एवं प्रशासन की नींव अकबर ने सुदृढ़ की। उसी के पास समय और शक्ति दोनों थी जिसके कारण वह ऐसा कर

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

सका। राज्य में मौजूद गाँवों और शहरों का प्रशासन पहले जैसा ही रहा। अकबर ने किस तरह की प्रशासनिक व्यवस्था अपने राज्य में लागू किया इसकी जानकारी उसके दरबार में रहने वाले ''अबुल फजल'' की रचना 'अकबरनामा' और 'आइन–ए–अकबरी' से मिलती है। अबुल फजल के अनुसार साम्राज्य कई प्रान्तों में बँटा था जिन्हें ''सूबा'' (प्रान्त) कहा जाता था। इसका प्रमुख 'सूबेदार' कहलाता था. जो राजनैतिक तथा सैनिक दोनों कार्य करता था। अकबर का साम्राज्य पन्द्रह सूबों में बँटा था। सूबा 'सरकार' में विभक्त था जो आज के जिलों से कई गुणा बड़ा होता था। सरकार (जिला) आज की तरह कई परगनों (प्रखण्डों) में बँटा था। यह भी आज के प्रखण्ड से काफी बड़ा होता था।

मुगल मनसबदार– मुगल सम्राट कई अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रशासन का काम देखने के लिए नियुक्त करता था। इन्ही अधिकारियों को 'मनसबदार' कहा जाता था। पूरे मुगल साम्राज्य में हजारों छोटे बड़े 'मनसबदार' थे। मनसबदार साम्राज्य में बादशाह के कानून और आदेश लागू करते थे। वे बादशाह के लिए सैनिक जिम्मेदारियों को भी निभाते थे। प्रत्येक मनसबदार को उनके जात के अनुसार पदक्रम एवं वरीयता प्राप्त थी जबकि सवार के अनुसार एक निश्चित संख्या में सेना और उससे जुड़े साजो–सामान को रखना पड़ता था। इसे बॉक्स में समझाया गया है। राज्य में शांति बनाए रखने का काम भी मनसबदार करते थे। राज्य विस्तार करने के लिए बादशाह द्वारा लड़ी गई लड़ाई में ये लोग उसी सेना से सहयोग करते थे। मनसबदारों की कई श्रेणियाँ होती थीं अर्थात् पद के आधार पर उनमें भी कुछ बड़े कुछ मध्यम दर्जे का तो कुछ छोटे होते थे. जैसे आज के अधिकारियों में भी इस तरह का विभाजन होता है। बड़े मनसबदारों को जिनकी संख्या बहुत कम थी को 'अमीर' कहा जाता था। 'अमीरों' को जितना वेतन मिलता था, उतना दुनिया के किसी अन्य राज्य के अधिकारियों को नही मिलता था। 8000 रुपया महीना

> मुगल मनसबदार जिनका 5000 जात का मनसब होता था उसे 30,000 प्रति माह वेतन मिलता था। उन्हें 340 घोड़े ,100 हाथी, 800 ऊँट, 100 खच्चर तथा 160 गाड़ीयाँ रखनी होती थीं इसके अलावा घुड़सवार एवं पैदल सैनिक भी रखने पड़ते थे। यह उदाहरण मनसबदारों के सैनिक दायित्व को बताता है।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

से 45000 रुपया महीना तक वेतन प्राप्त करने वाला, अमीर होता था। निम्न स्तर के मनसबदारों के नकद वेतन मिलता था मगर उच्च स्तर के मनसबदारों को जागीरें प्रदान की जाती थीं यह जागीरदार भी कहलाते थे। जागीर के अंतर्गत इन्हें निर्धारित लगान वाली भूमि आवंटित की जाती थी जिसकी लगान ये प्राप्त कर अपना खर्च पूरा करते थे।

अकबरनामा और आइन–ए–अकबरी

अकबर ने अपने मित्र और सलाहकार अबुल फजल को अपने शासन काल का इतिहास लिखने का आदेश दिया। अबुल फजल ने तीन भागों में यह रचना लिखी जिसका नाम 'अकबरनामा' था प्रथम भाग अकबर के पूर्वजों का बयान है। दूसरे में अकबर के शासन काल का इतिहास है जिसका नाम 'आइन–ए–अकबरी' है, इसमें प्रशासन, सेना, राजस्व, साम्राज्य का भूगोल समकालीन भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का वर्णन है।

vHkh d: vf/kdkjh
vkj exydkलीन
eu lcदार में क्या
dkई समानता gSA

मनसबदारों का प्रशासन में क्या स्थान है इसको बताने के लिए 'जात' और 'सवार' नामक दो संख्यासूचक शब्द अपनाए गए। इसमें जात की संख्या जितनी अधिक होती वह उतना ही बड़ा अधिकारी माना जाता था। उसी के अधार पर उन्हें वेतन दिया जाता था। इसी तरह 'सवार' की भी संख्या निश्चित होती थी जिसके अंतर्गत किसी मनसबदार को कितना पैदल सैनिक, कितने घोड़े और सवार तथा कितना हाथी रखना है, यह तय किया जाता था। मनसबदारों को वेतन के रूप में भूमि दिया जाता था जिससे वे राजस्व एकत्रित करते थे। मनसबदारों को दी गई भूमि जागीर कहलाती थी. इसमें जमीन से प्राप्त आमदनी का आकलन ठीक से किया जाता ताकि मनसबदारों के लिए निर्धारित वेतन उससे प्राप्त हो जाए। इस तरह मनसबदार जागीरदार भी बन जाते थे। इनका पद वंशानुगत नही था। मनसबदारों की नियुक्ति राजा के द्वारा की जाती थी। इसमें प्रान्त प्रमुख (सूबेदार) और बड़े मनसबदारों की

BCTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

सिफारिश भी चलती थी। ज्यादातर मनसबदार अपने जीवन काल में यह प्रयास करते थे कि किसी तरह वे अपने लड़के को भी मनसबदार बना दे। इसके लिए प्रभावशाली लोगों को कीमती उपहार भी उनके द्वारा दिए जाते थे।

राज्य की आमदनी, खेती बाड़ी और किसान& राज्य की आमदनी मुख्य रूप से खेती की उपज पर जो कर लिया जाता था उससे होती थी। खेती का काम छोटे किसानों द्वारा किया जाता था। किसानों से कर गाँवों में रहने वाले ग्राम प्रमुख या स्थानीय सरदारों द्वारा लिया जाता था। किसानों से उपज के उपर कितना कर लिया जाय इसे अकबर के राजस्व मंत्री राजा टोडरमल ने तय कर दिया था। उसने खेती लायक भूमि का सर्वेक्षण किया और उसी के आधार पर नकद रूप में कर तय किया गया था। यह मोटा–मोटी उपज का तीन से छः भाग तक होता था। जमीन को चार भागों में बाँटा गया। सबसे अच्छा पोलज–जिसपर हर साल खेती होती थी। परती जिसमें एक साल के अंतर पर खेती होती थी। चाचर, जिसमें कुछ अंतराल पर बुआई होती थी, और बंजर–लम्बे समय तक बिना बुआई वाला जमीन। लगान भी इन पर अलग–अलग था। राज्य खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को ऋण सहायता देता तथा सिंचाई के साधनों को निर्मित कराता था। किसान मुख्यतः चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, और कुछ सब्जियाँ उपजाते थे। जैसे– जैसे साम्राज्य का विस्तार हुआ उसका खर्च भी बढ़ता गया उसे पूरा करने के लिए किसानों के उपर लगान का बोझ बढ़ाया गया। इस कारण से किसानों के हालात और खराब हुए। उनके पास लगान देकर बहुत कुछ बचता नहीं था, जिसे वे अगले साल तक बचा कर रख सकें।

आम लोगों का जीवन– मुगल काल में जन साधारण के जीवन के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। इस काल में यूरोपीय व्यापारी भारत आते थे उनमें से कई लोगों ने भारत की संपत्ति और समृद्धि तथा शासक वर्ग के शानो–शौकत के जीवन के साथ–साथ जन–साधारण जैसे किसानों के जीवन से जुड़ी वस्तुओं को बनाने वाले, दस्तकार और मजदूरों की गरीबी से भरे जीवन का भी चित्रण किया है। सामान्य आदमी कितना कम कपड़ा पहनते थे इस बात का जिक्र बाबर ने भी अपनी आत्मकथा 'तुजुके–ए–बाबरी' में किया है। उसने कहा कि ''यहँ किसान तथा निम्नवर्ग के लोग करीब–करीब नंगे रहते हैं'' इसके बाद वह उस लंगोट का वर्णन करता है जो पुरुष

© WBBSE WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

पहनते थे तथा महिलाओं की साड़ियों का भी वर्णन करता है। लोगों के द्वारा जूतों का कम प्रयोग किया जाता था। जहाँ तक मकान और उसमें मौजूद समानों की बात करें तो घर मिट्टी का बना था जो 'फुँस' से ढंका जाता था। उसमें सामान्यतः एक कमरा और एक ही बरामदा होता था। मिट्टी के ही बने कुछ बर्तन होते थे। एक चारपाई और बाँस की बनी चटाई रहती थी, ताँबे तथा अन्य धातुओं के बर्तन इनकी पहुँच से दूर था। खाद्य पदार्थों में चावल बाजरा और दाल प्रमुख था। बंगाल और समुद्र के तटीय इलाकों में मछली प्रमुख खाद्य पदार्थ था। उत्तर भारत में गेहूँ और मोटे अनाज की रोटी तथा दाल प्रमुख भोजन था। लोगों के द्वारा भर पेट भोजन रात में ही खाया जाता। खाद्यानों की अपेक्षा तेल, घी सस्ते थे इसलिए लोगों का वह प्रमुख भोजन था। चीनी तथा नमक थोड़े महंगे, होते थे। इस प्रकार यद्यपि आम आदमी के पास कपड़ों की कमी थी लेकिन खाना अच्छा खाते थे। गाय और भैंस लोग अधिक संख्या में रखते इसलिए दूध–घी उन्हें काफी मिलता था। लोगों के ज़ीवन का आधार खेती था और वह वर्षा के उपर निर्भर करता था। प्रति वर्ष खेती होता था तो किसानों को खाने के लिए मिलता नहीं तो अकाल की स्थिति में पिछला साल का कुछ भी बचा नही रहता जो वे खा सकते थे। लगान जब नकद में देना तय हुआ तो किसानों की स्थिति और खराब होने लगी। लगान देने के दबाव में मंडी में उनका अनाज सस्ता बिक जाता था। कुल मिलाकर गाँवों में रहने वाले बहुसंख्या लोगों का जीवन बहुत गरीबी में बीतता था।

मुगलों की धार्मिक नीति और भारतीय लोगों के साथ उनका मिलन– अकबर ने भारत में अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए बहुसंख्यक भारतीय हिन्दु लोगों के साथ अच्छा सम्बन्ध बनाने के लिए धार्मिक स्तर पर मेल–जोल की नीति अपनायी। अकबर ने अपने राज्य को स्थायी बनाने के लिए भारतीय लोगों की बहुसंख्यक आबादी यानी हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। इसी के तहत अकबर ने एक नवीन धार्मिक नीति सुलह–ए–कुल (सर्वत्र–शांति) को अपनाया। यह नीति, सच्चाई, न्याय और शांति पर बल देता था।

सूलह–ए–कुल–: vdcj }kjk Hkkjr esa viukbZ xbZ /kkfeZd uhfr ftlesa lHkh /keksZa ds ekuus okyksa ds lkFk lfg".kqrk dk O;ogkj fd;k x;kA /kkfeZd vkLFkk ds Lrj ij vUrj ugha fd;k x;kA

© NOT TO BE PUBLISHED

अबुल फजल ने सुलह–ए–कुल के विचार और नीति को अपनाने में अकबर की मदद की। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी इस नीति को अपनाया। औरंगजेब के काल में धार्मिक स्तर पर मेल–जोल बनाए रखने की नीति राजनैतिक स्थिति के कारण खंडित हुआ। अकबर ने समाज में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के रखने के लिए एक नई नीति अपनाई जिसे हम 'दिन–ए–एलाही' के नाम से जानते हैं। सभी धर्मों के सार को लेकर उसने इस नई नीति का प्रतिपादन किया।

जहाँगीर

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

जहाँगीर और शाहजहाँ के समय मुगल साम्राज्य– 1605 में अकबर के मरने के बाद उसका पुत्र जहाँगीर बादशाह बना। उसका शासनकाल सामान्यतः शांतिपूर्ण रहा। इस समय अधिक युद्ध नहीं हुआ, फिर भी उसने अपने पिता द्वारा जीते गए क्षेत्र पर नियंत्रण और प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखा। बंगाल पर मुगल सत्ता को इसने और मजबूत किया। मेवाड़ के राणा के साथ स्थाई शांति स्थापित की। पंजाब के कांगड़ा, क्षेत्र पर अधिकार किया तथा अहमदनगर राज्य के साथ शांति समझौता किया। जहाँगीर के लिए सबसे दुखद रहा कंधार का मुगलों के हाथ से निकल जाना वह अपनी न्याय की जंजीर के लिए जाना जाता था। इसके तहत उसने सोने की एक लम्बी जंजीर बनवाई जिससे घंटियाँ बंधी थीं।

शाहजहाँ

यह राजमहल की दीवार से लटका दिया गया था। उसने यह घोषणा करवाई की किसी के साथ सरकार अथवा अधिकारी

अन्यायपूर्ण व्यवहार करती तो वह इस जंजीर को खींच कर अपनी फरियाद सून सकता है। इसका आम आदमी पर कितना असर हुआ यह पता नहीं। राजधानी के लोग इससे जरूर लाभान्वित हुए होंगे।

शाहजहाँ— 1628 में पिता जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ गद्दी पर बैठा। आम लोगों के बीच वह ताजमहल के निर्माता के रूप में लोकप्रिय है। बुंदेलखंड और दक्षिण भारत के विद्रोहों को उसने दबाया। बीजापुर और गोलकुंड जैसे दक्षिण भारतीय राज्य को अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। पश्चिमोत्तर सीमा को सुरक्षित करने के लिए मध्य एशिया के बल्ख और बदख्शाँ पर आक्रमण किया। कंधार को एक बार पुनः अपने अधिकार में किया. लेकिन वह स्थाई नहीं रह सका। असम के कामरूप क्षेत्र पर अधिकार किया। इस प्रकार उसके शासन काल में मुगल साम्राज्य और मजबूत हुआ। मुगल राज्य की सीमाएँ भी इस समय बढ़ीं। राजनीतिक रूप से शाहजहाँ का काल मुख्यतः शांतिपूर्ण रहा। यद्दपि मध्य एशिया के अभियान द्वारा प्राप्त क्षेत्र पर उसका नियंत्रण नहीं रहा।

औरंगजेब का शासन काल— 1656 में बादशाह शाहजहाँ बुरी तरह बीमार पड़ गया। सबलोग यह मानने लगे कि कुछ दिनों में वह मर जाएगा। शाहजहाँ के चार पुत्र थे—दारा, शुजा, औरंगजेब, और मुराद। चारो बादशाह बनना चाहते थे। शाहजहाँ ने दारा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मगर उसके बाकी के तीन लड़कों ने इस बात को नहीं माना।

औरंगजेब

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

सब अपनी–अपनी सेना लेकर–तख्त पर अधिकार के लिए आगरा की ओर चल दिए। भाइयों के बीच कई युद्ध हुए। अंत में औरंगजेब सफल रहा। वह अपने पिता के जीते जी शासक बन गया। शाहजहाँ को उसने 8 वर्षो तक कैद में रखा। इसके कारण उसकी अलोचना होती है।

औरंगजेब ने साम्राज्य को विस्तारित करने की कोशिश की। इसके तहत 1663 ई0 में अहोम राज्य (असम) को अपने अधीन किया। लेकिन यह अस्थाई रहा। दक्षिण भारत के दो महत्वपूर्ण राज्य बीजापुर और गोलकुंडा को 1686–87 ई0 में मुगल राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार औरंगजेब के समय मुगल साम्राज्य अफगानिस्तान से लेकर तमिलनाडु तक फैल गया। राज्य के इस विस्तृत रूप ने कई नई समस्याएँ औरंगजेब के समक्ष खड़ी कर दीं। इनमें एक था वेतन के मद में मिलने वाले जागीरों की कमी। क्योंकि पशासनिक वर्ग का स्वरूप साम्राज्य फैलने के साथ काफी बढ़ गया था और उनके लिए जागीर कम पड़ने लगी। इसने पूरे राज्य को अस्त व्यस्त कर दिया था– इसके परिणाम घातक रहे जो आगे मुगल राज्य के पतन के कारकों में महत्वपूर्ण हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण– अठारहवीं शताब्दी में मुगल सम्राज्य छिन्न–भिन्न होने लगा। पतन के कुछ कारक तो सत्रहवीं सदी में ही प्रस्तुत हो चुके थे, पर वास्तविक कमजोरी 18वीं शताब्दी में दिखाई पड़ी। औरंगजेब की मृत्यु 1707 में हुई। उसके उत्तराधिकारी उस विशाल साम्राज्य को सम्भाल पाने में सक्षम नहीं थे। इसके साथ अन्य समस्याएँ भी थीं एक शासक के मरने के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष सामान्यतः होता था। इसमें धन और सैन्य शक्ति नष्ट होती गई। प्रभावशाली पदाधिकारी इस स्थिति में किसी एक राजकुमार के साथ मिलकर अपना स्वार्थ साधना चाहते थे। वस्तुतः मुगलों के परवर्ती शासक महत्वपूर्ण पदाधिकारियों के हाथ के कठपुतली थे। इसने सम्पूर्ण प्रशासन को गुटों में विभक्त कर दिया। शासकों के कमजोर होने पर महत्वपूर्ण प्रांतों के गर्वनर स्वतंत्र शासक के रूप में व्यवहार करने लगे।

पतन का एक मौलिक कारण आर्थिक कठिनाईयाँ थीं। इस समय तक

© BSTBC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

(1707 के बाद) न तो पर्याप्त धन बचा था और ना ही जागीर जो अधिकारियों को दी जाती। जमींदार असंतुष्ट थे क्योंकि मनसबदार का उनपर कठोर नियंत्रण था वे समझने लगे कि ये लोग आमदनी का बड़ा भाग स्वयं रख लेते हैं अतः उनका मनसबदारों से संघर्ष हुआ। लगान की दर ऊँची होने के कारण किसान अधिकाधिक गरीब होते गए अतः उन्होंने जमींदारों के साथ विद्रोह किया। चूँकि मुगलों का संघर्ष कई जगहों पर चल रहा था अतः उन्हें धन की जरूरत थी जो प्राप्त नहीं हो पा रहा था। इससे आर्थिक संकट अत्यधिक बढ़ गई।

मुगल प्रशासन भी अक्षम होता जा रहा था मनसबदारी प्रथा में अनेक परिवर्तन हो गए थे उनकी संख्या अकबर के समय से तीन गुणा बढ़ गई। वे लगान वसूली का पूरा हिसाब राजा को नही देते थे सैनिकों की संख्या भी उन्होंने घटा दी। उनका स्थांतरण भी अब नहीं होने लगा इसलिए वे स्थानीय सरदारों के समान व्यवहार करने लगे थे। मनसबदारों की बढ़ती संख्या के कारण उनको वेतन के रूप में मिलने वाली जागीर की कमी हो गई। उनमें जागीर प्राप्त करने की होड़ शुरू हो गई। प्रत्येक अधिकारी इसी प्रयास में लगा रहता था कि अच्छी जमीन उसे मिले। जागीर पर नियंत्रण भी अस्थाई होता था क्योंकि प्रशासक एक दूसरे के विरुद्ध षड़यंत्र कर जागीर की अदला–बदली करवा देते। इस प्रकार जागीर का यह संकट सम्पूर्ण मुगल प्रशासन को छिन्न–भिन्न कर दया।

मुगलों का सैनिक क्षमता और शक्ति भी कमजोर हो गया था। अब उच्च अधिकारियों की संख्या का अनुपात बहुत बढ़ गया था। सेना की निपुणता पहले जैसी नहीं रही। किसी समय मुगलों का तोपखाना विश्व में प्रसिद्ध था लेकिन अन्य सेनाओं की तुलना में अब यह तकनीकी रूप में पिछड़ गया था। बंदूकों और तोपों के उन नवीनतम नमूनों में मुगलो की अब कोई रुचि नहीं रह गई थी जिनका प्रयोग संसार के अन्य देश कर रहे थे। सैनिकों को प्रशिक्षण देने के स्थान पर वे विदेशियों को अपनी तोपें को चलाने के लिए नियुक्त कर संतुष्ट हो जाते। इन्होंने नौसेना के विकास की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। उनको यूरोपीय देशों के आक्रमण की कोई आशंका नहीं थी। यूरोप में नवीन विज्ञान का विकास हो रहा था। वहाँ के विचारशील व्यक्ति नया ज्ञान प्राप्त करके नवीन अनुसंधान कर रहे थे। मुगल कालीन भारत इन नवीन

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

खोजों की ओर से पूर्णतः उदासीन रहा। अभिजात्य वर्ग के लोग और धनी व्यापारी विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने में ही रूचि लेते थे। इस विलासितापूर्ण जीवन से 18वीं शताब्दी में देश का चारित्रिक और सामाजिक पतन हो गया। अभिजात कुल के लोग अपना समय आलस्य और शराब पीने में नष्ट कर देते थे।

मुगल शासकों के समक्ष अपनी ही परेशानी एवं समस्या बहुत अधिक थी तभी उन पर उत्तर–पश्चिम से भी हमले किए जाने लगे। इन आक्रमणों ने मुगलों की शक्ति समाप्त कर दी। पहला आक्रमण सन् 1739 ई0 में ईरान के शासक नादिरशाह ने किया और राजधानी दिल्ली को तहस–नहस कर दिया। मुगल उसके सामने झुक गए। उसने भारत से मनचाहा धन लूटा। समकालीन लेखकों ने लुट का विवरण देते हुये बताया है कि नादिरशाह ने साठ लाख रुपये, हजारों सोने के सिक्के, एक करोड़ रुपये के सोने के बर्तन, पचास करोड़ के हीरे–जवाहरात, जिसमें शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया तख्त–ए–ताऊस (मयूर सिंहासन) और कोहिनूर हीरा भी शामिल था, लुटा गया। मयूर सिंहासन बेशकीमती रत्नों से बना था। लुट का यह विवरण भारत की संपन्नता को भी दर्शाता है।

नादिरशाह के बाद अफगान सरदार अहमदशाह अब्दाली ने भी कई आक्रमण किया इसने मुगलों के साथ–साथ प्रमुख भारतीय शक्ति मराठों को भी कमजोर किया। इन आक्रमणों के बाद मुगल साम्राज्य दिल्ली के आसपास तक सीमित रह गया। मुगल साम्राज्य किसी तरह 1857 ई0 तक बना रहा लेकिन इसकी शक्ति नए क्षेत्रीय राज्यों में विभक्त हो गयी।

इस तरह मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। राजधानी दिल्ली एक कमजोर नगर रह गया। परन्तु उस संस्कृति और जीवन के उन तरीकों का जो मुगल साम्राज्य के वैभव और विलास के अंग थे, का अंत नहीं हुआ। उसकी वैभवशाली परम्परा उसके अवशेष पर पैदा हुई शक्तियों के पास पहुँच गई, जो अठारहवीं शताब्दी में उदित हुई थी। इस सदी का इतिहास इन्हीं राज्यों या क्षेत्रीय शक्तियों का इतिहास है। इन राज्यों में मुगल वैभव की झलक अब भी देखी जा सकती थी। इन राज्यों के विषय में आप आगे के अध्याय में पढ़ेंगे।

BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

फिर से याद करें–

1. सही जोड़े बनाएँ:–

(क) मनसब	न्याय की जंजीर
(ख) बैरम खाँ	पद
(ग) सूबेदार	अकबर
(घ) जहाँगीर	चित्तौड़
(ड.) महाराणा प्रताप	गर्वनर

2. रिक्त स्थान भरें:–

(i) पानीपत की प्रथम लड़ाई बाबर और........ .... के बीच . ...ई0 में हुई।

(ii) यदि जात एक मनसबदार के पद और वेतन का द्योतक था, तो सवार उसके.................................को दिखाता था।

(iii) शेरशाह ने .... बड़ी संख्या में निर्माण करवाया।

(iv) अकबर का दरबारी इतिहासकार .... था जिसने........................... नामक पुस्तक लिखी।

(v) .... मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

,आइए विचार करें:–

i) मनसबदार और जागीरदार में क्या संबंध था ?

ii) पानीपत के मैदान में होने वाली प्रथम लड़ाई का भारतीय इतिहास में क्या महत्व है ?

iii) मुगल प्रशासन की विशेषताओ को बताओ। उसमें मनसबदारों की क्या भूमिका थी

iv) मुगल साम्राज्य के पतन के क्या कारक रहे ?

v) भू–राजस्व से प्राप्त होने वाली आय मुगल साम्रज्य के स्थायित्व के लिए कहाँ तक जरूरी थी ?

vi) मुगल अपने आप को तैमूर के वंशज क्यों कहते थे ?

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

आइए करके देखें:–

I) पता लगाओ मुगलों द्वारा अपनाई गई प्रशासनिक व्यवस्था में कौन आज के भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में दिखाई पड़ता है ?

ii) मुगलों के समय गाँव में रहने वाले लोगों और आज के ग्रामीण लोगों में रहन सहन और खान–पान के स्तर पर आप को क्या समानता दिखती है ?

5

शक्ति के प्रतीक के रूप में वास्तुकला, किले एवं धार्मिक स्थल

मुख्यमंत्री बिहार दर्शन योजना के अन्तर्गत बच्चे अपने विद्यालय से शैक्षणिक परिभ्रमण पर बोधगया पहुँचे। वहाँ सबसे पहले उन्होंने विश्व प्रसिद्ध महाबोधि मंदिर को देखा जिससे वे बहुत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ बच्चों ने अपने शिक्षक के सहयोग से मंदिर निर्माण की शैली (संरचना), उसमें प्रयुक्त सामग्री, निर्माता के उद्देश्य, उसका काल, इत्यादि से सम्बन्धित प्रश्न पूछे।

© BSTBC
WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

महाबोधी मंदिर

आप कक्षा छः में पढ़ चुके हैं कि किस तरह से तत्कालीन शासकों ने अपने धार्मिक विश्वासों को व्यक्त करने के लिए बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म से जुड़े उपासना स्थलों का निर्माण करवाया। मध्यकालीन शासकों ने भी इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर स्थापत्य कला के कई नमुने निर्मित करवाया। इस काल में शासकों ने अपने धार्मिक विश्वासों के अलावा राजनैतिक शक्ति और प्रभाव को भी इमारतों के निर्माण द्वारा व्यक्त किया। मध्यकाल का शासक वर्ग अपनी सत्ता को वैध ठहराने, शासन को स्थायी बनाने तथा पड़ोसी राज्य से अपने राज्य को श्रेष्ठ साबित करने आदि के उद्देश्य से बड़े पैमाने पर

इमारतों और धार्मिक स्थलों का निर्माण करवाया गया। आठवीं से अठारहवीं शताब्दियों के बीच भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग निर्माण शैलियों में राजाओं एवं उनके अधिकारियों द्वारा दो तरह की इमारतों का निर्माण किया गया। पहली तरह की इमारतों में किले महल तथा मकबरे थे जो राजाओं एवं बादशाहों के निजी हितों के लिए थे दूसरी श्रेणी में मंदिर, मस्जिद, हौज, कुएँ, सराय, बाजार जैसी इमारतें धार्मिक और लोगों के उपयोग से जुड़ी थीं।

> लिंगराज और महाबोधि मंदिर की संरचना में क्या अंतर दिखता है

लिंगराज मंदिर

सरंचना शैली और निर्माण सामग्री के उपयोग के आधार पर इस काल में बनने वाली इमारतों को तीन भाग में बाँट सकते हैं। पहले भाग के अन्तर्गत आठवीं से तेरहवीं सदी के बीच बने मंदिरों को रखा जा सकता है। मंदिरों का निर्माण मुख्यतः नागर और द्रविड़ नामक दो शैलियों में हुआ। वस्तुतः इस काल में स्थापत्य कला के सभी रूपों का विकास हुआ, जिसमें मंदिर ही अभी बचे हैं।

आपने पुरी के जगन्नाथ मंदिर या खजुराहो (मध्य प्रदेश) में बने मंदिरों के विषय में सुना होगा। यह अपने निर्माण शैली भव्यता और मजबूती के लिए विश्व में आज भी प्रसिद्ध है। इन मंदिरों का निर्माण नागर शैली में हुआ था। इस शैली के मंदिर आधार से शीर्ष तक आयताकार एवं शंक्वाकार संरचना में बनी होती। शीर्ष क्रमशः पतला होता जाता है जिसे 'शिखर' कहा जाता है। मंदिर के केन्द्रीय भाग में प्रधान देवता की मूर्ति स्थापित होती है जिसे 'गर्भ–गृह' कहा जाता है। मंदिर चारों तरफ अलंकृत स्तंभों पर

© JRSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

टिकी होती है। यह प्रदक्षिणा पथ से भी घिरा होता है। गर्भ गृह के पीछे और अगल–बगल झरोखा बना होता है। उस समय मंदिरों का निर्माण मुख्यतः पत्थरों को तराश कर क्रमिक रूप से एक दूसरे के साथ जोड़ते हुए बनाया जाता था।

आपके गाँव के मंदिर में नागर शैली की कौन सी विशेषता दिखती है।

कोणार्क का सूर्य मंदिर

तेरहवीं शताब्दी में निर्मित वास्तुकला की महान उपलब्धि, कोर्णाक का सूर्य मंदिर है। सूर्य पौराणिक कथाओं में अपने सात घोड़ों वाले रथों पर सवार होकर आकाश में चलता है। इसी दृश्य को मंदिर के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। मंदिर को रथ का रूप दिया गया है। मंदिर का आधार एक विशाल चबूतरा है। इसके चारों ओर पत्थर के तराशे हुए बारह पहिए लगाए गए हैं

और सूर्य के रथ का पूरा अहसास कराने के लिए चबूतरे के सामने जो सीढ़ियाँ हैं उनसे सात अश्वों की स्वतंत्र मूर्तियाँ ऐसे लगी हैं जैसे ये सातों घोड़े रथ को खींच रहे हैं। इसी चबूतरे पर मंदिर के दो भवनों देकुल और जगमोहन का निर्माण किया गया था। मंदिर की बाह्य दिवारें उकेरी हुई आकृतियों से सजी हुई है। ये आकृतियाँ फूल–पत्तियों, पशु–देव–दानव, काल्पनिक पशुओं के रूप में बड़े आकार में उत्कीर्ण हैं।

WEBCOPY © BSTBPC NOT TO BE REPUBLISHED

www.absol.in

इसी काल में दक्षिण भारत में मंदिर स्थापत्य कला की 'द्राविड़' शैली का विकास हुआ। इसकी विशेषता थी कि गर्भ गृह के ऊपर कई मंजिलों का निर्माण होता था जिसकी संख्या पाँच से सात तक होती थी। इसे 'विमान' का नाम दिया गया। स्तम्भों पर टिका एक बड़ा कमरा होता था जिसे मंडप कहा गया। गर्भ गृह के सामने अलंकृत स्तम्भों पर टिका एक बड़ा कक्ष होता था। जिसमें धार्मिक अनुष्ठान किए जाते थे। सम्पूर्ण मंदिर की संरचना ऊँची दीवारों से घिरी होती जिसमें एक प्रवेश द्वार होता था वह बहुत भव्य और अलंकृत होता था। इसे 'गोपुरम्' कहा जाता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण मदुरै के मीनाक्षी सुन्देश्वर मंदिर है। तंजौर का वृहदरेश्वर मंदिर द्रविड़ शैली में ही निर्मित है लेकिन सामान्यतया दिखने में वह नागर शैली की विशेषताओं से परिपूर्ण लगता है। इस तरह के मंदिरों का निर्माण एक साथ शासकों की शक्ति, धन–वैभव और भक्ति भाव को प्रदर्शित करते हैं। इसका प्रमाण है वृहदरेश्वर मंदिर से जुड़ा एक अभिलेख। इससे यह ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण राजाराजदेव ने अपने देवता की उपासना हेतु किया था जिसका नाम राजाराजेश्वरम् था। शाासक और भगवान के नाम में समानता का

कोणार्क सूर्य मंदिर और मीनाक्षी मंदिर के उपरी भाग में क्या अन्तर है?

मीनाक्षी मंदिर मदुरै

सुन्देश्वर मंदिर मदुरै

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

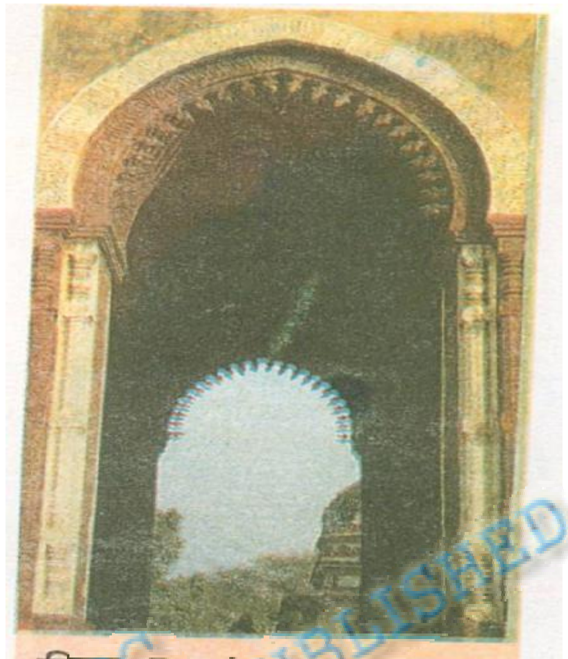

मेहराब का डॉट अधिरचना रूप   **मेहराब निर्माण की टोडा तकनीक**

उद्देश्य था जनता के समक्ष अपने आप को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पेश करना। धार्मिक अनुष्ठान में भी देवता और राजा दोनों की उपासना की जाति थी। राजा का देवता मंदिर का प्रधान देवता होता था तो लघु देवता उसके सहयोगियों और अधीनस्थों के। इस प्रकार मंदिर और उसमें स्थापित देवी देवता शासक और उसके सहयोगियों द्वारा शासित क्षेत्र का छोटा रूप था।

द्वितीय भाग के अन्तर्गत तेरहवीं से सोलहवीं सदी के बीच बनी इमारतों को रखते हैं। इस काल की इमारतें स्थापत्य कला के सभी विधाओं में नयी है। इसका निर्माण मुस्लिम शासकों द्वारा किया गया था। इस काल में भारत में एक नए शासक वंश (तुर्क अफगान शासक वर्ग) की स्थापना हुई। नए शासक वर्ग की पहली आवश्यकता थी रहने के लिए भवन और अपने समर्थकों हेतु पूजा स्थलों का निर्माण। पूजा स्थल उपलब्ध करने के लिए पहले से मौजूद कुछ मंदिरों एवं अन्य इमारतों को मस्जिदों में परिवर्तित किया। भारत में बनने वाली पहली मुस्लिम उपासना स्थल

© BSTBPC WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

कुव्वत—उल—इस्लाम (इस्लाम की शक्ति) मजिस्द है जो दिल्ली स्थित कुतुबमीनार परिसर में है। इस काल में मेहराब और 'गुम्बद' नामक दो नवीन स्थापत्य शैलियों का प्रयोग बड़े पैमाने पर शुरू हुआ। गुम्बद इमारतों को भव्य बना देता था तो मेहराब उसे मजबूती प्रदान करता। मेहराब का दो रूप इस समय भारत में प्रचलित हुआ। इन दोनों में कुछ अंतर है जिसे आप इनके नाम के साथ दिए गए चित्र में स्पष्ट कर सकते हैं।

शैली में परिवर्तन के साथ—साथ निर्माण सामग्रियों में भी नई चीजें आईं। अब चूना पत्थर, और सुर्खी का प्रयोग बढ़ा। यह उच्च श्रेणी का गारा होता था जो पत्थर के टुकड़ों के मिलाने में सहायक था। इसकी वजह से विशाल ढाँचा का निर्माण सरल और तेज हुआ। इससे पहले भारत में इमारतों को बनाने में शहतीर के उपयोग पर आधारित क्षैतिज शैली को अपनाया जाता था जिसमें एक विस्तृत संरचना का निर्माण संभव नहीं था।

कुतुबमीनार इस्लामी शक्ति का प्रतीक :– तुर्कों की भव्य इमारत कुतुबमीनार है। इसका निर्माण दिल्ली सल्तनत के संस्थापक कुतुबउद्दीन ऐबक द्वारा शुरू करवाया गया। उसने इसे सूफी संत कुतुबउद्दीन बख्तियार काकी की याद में बनवाना शुरू किया था। यह पाँच मंजिल की इमारत है जिसकी कुल ऊँचाई 71.4 मी० है। पहली मंजिल ऐबक द्वारा बनवाया गया था। अगली तीन मंजिल इल्तुतमिश ने 1229 में बनवाया। इस मीनार का शीर्ष वज्रपात या बिजली गिरने के कारण टूट गया था। जिसकी मरम्मत फीरोज तुगलक ने

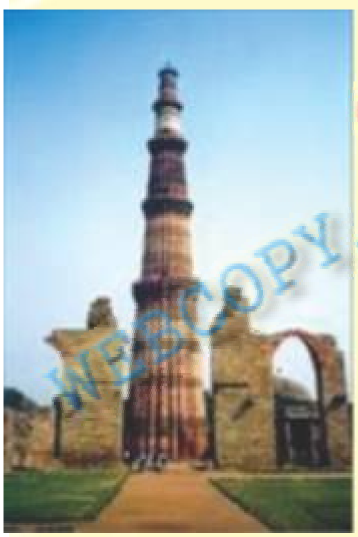

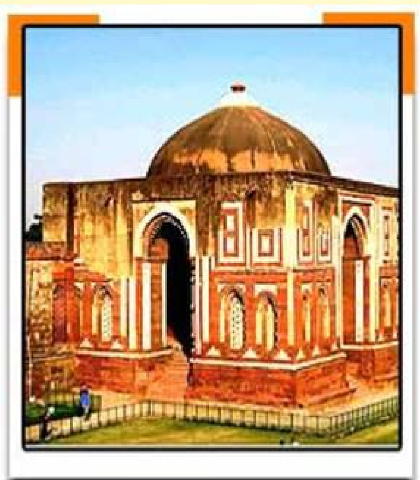

अलाई दरवाजा

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED
© BSTBPC

करवाया साथ ही उसी ने इसमें एक मंजिल और जोड़ा। इसका मुख्य आर्कषण इसके छज्जे हैं जो मीनार से जुड़े हुए हैं। लाल और सफेद बालू पत्थर तथा संगमरमर से इसका निर्माण हुआ है। कुतुबमीनार का निर्माण इस्लामी शैली में हुआ।

मेहराब के वैज्ञानिक विधि का पहली बार प्रयोग कुतुबमीनार के प्रवेश द्वार अलाई दरवाजा मे देखते हैं यह कुतुबमीनार परिसर में स्थित है। इस्लामी शैली के मेहराब के निर्माण के लिए यह इमारत भारत में प्रसिद्ध है। तुगलक कालीन स्थापत्य में गयासुद्दीन का मकबरा एक नई शैली की ओर संकेत करता है। इसने भारतीय और इस्लामी शैलियों का सुंदर एवं संतुलित समावेश हुआ है। तुगलक काल में भवनों का निर्माण बड़े पैमाने पर हुआ। इस काल की इमारत ऊँचे चबूतरे पर और गुम्बद संगमरमर का बनाया गया है।

दिल्ली सल्तनत के कमजोर होने के साथ-साथ वहाँ के कलाकारों का अन्य क्षेत्रों में पलायन हुआ। वहाँ स्थानीय शासकों ने जिनका उदय सल्तनत काल के पतन के बाद हुआ, इन्हें संरक्षण प्रदान किया। इन राज्यों में स्थानीय विशेषताओं को ग्रहण कर स्थापत्य कला का काफी विकास किया गया। ऐसे स्थानीय राज्य जिसने कला का बहुत संरक्षण दिया, वे थे गुजरात, बंगाल, जौनपुर और मालवा।

अटाला मस्जिद जौनपुर

आप यह जानते होंगे कि बारहवीं शताब्दी में बिहार में तुर्कों का अधिकार हो गया था। इसके बाद बिहार में भी तुर्क अफगान शैली में इमारतों का निर्माण शुरू हुआ इनमें आरंभिक इमारत हैं बिहार शरीफ स्थित मलिक इब्राहिम या मलिक बया का मकबरा, तेलहड़ा का मस्जिद, बेगुहजाम की मस्जिद।

"मलिक बया का मकबरा"

BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

SOL www.absol.in

बिहार में तुर्क काल की सबसे महत्त्वपूर्ण इमारत बिहारशरीफ स्थित मलिक इब्राहिम या मलिक बया का मकबरा है। इसका निर्माण 1353 में हुआ। इस पर दिल्ली की तुगलक शैली का प्रभाव है। इसकी प्रेरणा गयासुद्दीन तुगलक के मकबरे से ली गई है। इसमें ढलवाँ दीवारें और गुम्बद बनाया गया है। इसका निर्माण ईंटो से हुआ है मलिक इब्राहिम प्रसिद्ध सूफी संत थे। इस मकबरे का निर्माण इनके लड़के सैयद दाउद द्वारा किया गया।

स्थापत्य कला के विकास के तृतीय भाग के अन्तर्गत मुगल काल में बनी, इमारतों को रखा जा सकता है। मुगलों ने भव्य महलों, किलों, विशाल द्वारों, मस्जिदों, एवं बागों का निर्माण करवाया। मुगल शासकों ने व्यक्तिगत स्तर पर इमारतों के निर्माण में रूचि दिखाई विशेषकर शाहजहाँ ने। मुगल कला का आरंभिक रूप बागों के निर्माण में दीखता है। इसकी शुरुआत बाबर के द्वारा हुई। उसने अपनी आत्म कथा में औपचारिक रूप से बागों की योजनाओं और उनके बनाने में अपनी रूचि का वर्णन किया है। बाग दीवार से घिरे होते थे तथा कृत्रिम नहरों द्वारा चार भागों में विभाजित आयाताकार अहाते में स्थित होते थे। चार समान हिस्सों में बँटे होने के कारण ये चार बाग कहलाते थे। कुछ सर्वाधिक सुंदर चार बागों जैसे काश्मीर, आगरा और दिल्ली में जहाँगीर और शाहजहाँ ने बनवाया था।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

मुगल स्थापत्य कला का व्यवस्थित एवं वास्तविक विकास अकबर के काल से शुरू हुआ। अकबर द्वारा निर्मित इमारतों में इस्लामिक हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा स्थानीय शैलियों का समावेश हुआ है। उसने आगरा और फतेहपुर सीकरी में किले और महलों का निर्माण करवाया। यहाँ की सबसे महवपूर्ण इमारत बुलंद दरवाजा है जो अर्ध गुम्बदशैली में बना है। इन इमारतों का निर्माण लाल बलुआ पत्थर से किया

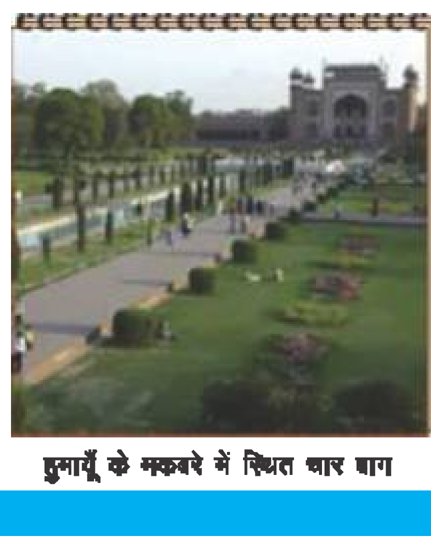

हुमायूँ के मकबरे में स्थित चार बाग

गया। साम्राज्य के विस्तार के साथ उसके संसाधन बढ़े इससे स्थापत्य कला का विकास भी हुआ। जहाँगीर के शासन काल के अन्त में पूरी तरह से संगमरमर की इमारतें बनने लगीं। इनकी दीवारों पर कीमती पत्थरों की नक्काशी की गई। हुमायूँ और एतामादुदौला का मकबरा इसका एक अच्छा उदाहरण है। इन दोनों मुगलकालीन इमारतों में एक नई शैली का सूत्रपात हुआ, जैसे हुमायूँ के मकबरा में गुम्बद पूर्णतः संगमरमर का बना है। इसमें ऊँचा, मेहराबयुक्त, प्रवेश द्वार का प्रयोग पहली बार हुआ। एतमादुद्दौला के मकबरा में पहली बार पितरा दूरा अथवा रंगनी पत्थरों से पच्चीकारी का प्रयोग किया गया। आगे चलकर इसका पूरा इस्तेमाल ताजमहल में हमें दिखाई पड़ता है। एतमादुद्दौला नूरजहाँ का पिता था जिसका प्रभाव जहाँगीर के काल में नूरजहाँ के कारण बहुत अधिक रहा। नूरजहाँ के प्रयासों से ही यह मकबरा बना था।

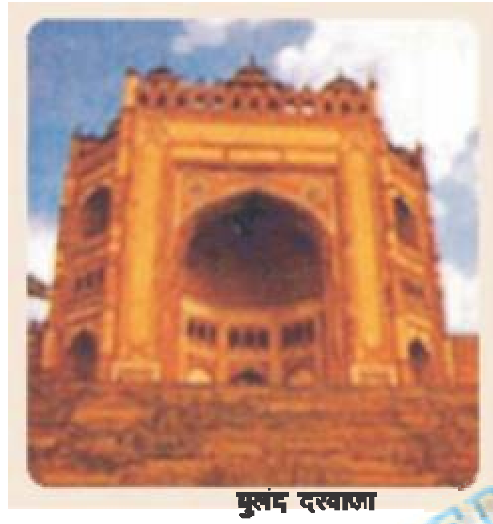

बुलंद दरवाजा

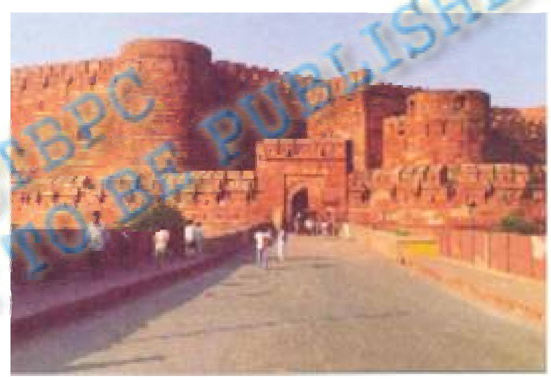

आगरा का किला

हुमायूँ का मकबरा

शाहजहाँ के शासन काल में मुगलकालीन भव्य इमारतों को बनाया गया। यह काल अपेक्षाकृत शांत और शासन के स्तर पर काफी समृद्ध था, यद्यपि जनता इस काल में ज्यादा

WEBCOPY © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

परेशान रही क्योंकि सबसे अधिक अकाल इसी काल में हुए। इस समय बनने वाली भव्य इमारतों के पीछे एक तर्क यह भी दिया जाता है कि जनता को कठिनाइयों से निकालने के उद्देश्य से शाहजहाँ व्यापक स्तर पर इमारतों का निर्माण करवा रहा था ताकि लोगों को लगातार काम मिल सके। इस काल में बनने वाली इमारतों में संगमरमर का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर किया गया। साथ ही स्तंभों तथा दीवारों पर रत्न जड़ित नक्काशी (पितरादूरा) का प्रयोग भी खूब किया गया। इन दोनों के इस्तेमाल से निर्मित ताजमहल स्थापत्य कला का एक अभूतपूर्व उदाहरण है। इसकी प्रमुख विशेषता उसका विशाल गुम्बद तथा मुख्य भवन के चबूतरे के किनारे पर खड़ी चार मीनारें हैं। संगमरमर के सुंदर झरोखे, जड़े हुए कीमती पत्थरों तथा छतरियों से इसकी सुन्दरता बहुत बढ़ जाती है।

एतमादुद्दौला का मकबरा

ताजमहल

© WEBCOPY . NOT TO BE PUBLISHED

इसके अलावा इसके चारों तरफ लगाए गए सुसज्जित बाग से यह और भी प्रभावशाली लगता है। इस काल में

> पितरा दूरा—उत्कीर्ण संगमरमर अथवा बलूआ पत्थर पर रंगीन ठोस पत्थरों को दबाकर बनाया गया सुन्दर तथा अलंकृत नमूने

आगरा तथा दिल्ली में भव्य मस्जिदों का निर्माण भी करवाया गया। शाहजहाँ ने दिल्ली में शाहजहाँबाद नामक नवीन नगर की स्थापना 1638 ई॰ में की जहाँ प्रशासनिक भवन के रूप में लाल किला का निर्माण करवाया गया। यह किला लाल बलुआ पत्थर से बनाया गया जो अपने निर्माण काल से शक्ति और सत्ता का केन्द्र बना हुआ है।

शाहजहाँ के काल में निर्माण कार्य अनवरत रूप से चलते रहे विशेष रूप में आगरा और दिल्ली में। उसने सबसे अधिक ध्यान सार्वजनिक और निजी सभा कक्षों (दीवाने–ए–आम, दीवाने–ए–खास) के निर्माण पर दिया। निर्माण में इस बात पर ध्यान दिया गया कि बादशाह के बैठने का आसन ऊँचा हो ताकि सभी का ध्यान उसके तरफ रहे। उसके सिंहासन के पीछे पितरादूरा का जो काम किया गया है उसमें चित्रकारी भी शामिल है। यह उसकी शक्ति न्याय प्रियता और पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि इत्यादि का आभास कराने के उद्देश्य से था।

दिल्ली स्थित लालकिले का चित्र

औरंगजेब के शासन काल में स्थापत्य कला का विकास शिथिल पड़ गया। वस्तुतः उसका शासन अपने पुर्ववर्ती की अपेक्षा अशांत रहा। उसे निरंतर आन्तरिक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। साथ ही साम्राज्य को नुकसान पहुँचाने वाले कई कारक भी उसी काल में उभरकर सामने आए जिसके विषय में आप अध्याय चार में पढ़ा है। औरंगजेब ने लाल किला में मोती मस्जिद एवं अपनी पत्नी की

मनेर स्थित शाहदौलत का मकबरा

WEBCOPY ©BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

याद में महाराष्ट्र के औरंगाबाद में बीबी का मकबरा बनवाया। लेकिन यह इमारत मुगल काल के उस भव्यता को प्रदर्शित नहीं करते, जो उसकी विशेषता थी।

मुगल शैली का बिहार में सबसे सुन्दर उदाहरण 1617 में निर्मित शाह दौलत का मनेर स्थित मकबरा है, जिसे जहाँगीर के समय में बिहार के प्रांत पति इब्राहिम खाँ काकर ने बनवाया था। इसका निर्माण लाल बलुआ पत्थर से हुआ है। इसमें अकबरकालीन मुगल शैली की सभी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। मुगल वास्तुकला की शैली और परम्परा 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में नवोदित राज्यों के संरक्षण में जारी रहा। इसका एक अच्छा उदाहरण अवध के नबावों द्वारा लखनऊ में निर्मित इमारतें हैं।

सासाराम स्थित शेरशाह का मकबरा

बिहार के सासाराम में तीन मकबरों का निर्माण 16 वीं सदी में शेरशाह और उसके पुत्रों द्वारा करवाया गया। इसमें शेरशाह का मकबरा, जो अफगान शैली में निर्मित है, स्थापत्य कला में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह अफगान शैली का संपूर्ण भारत में सबसे अच्छा उदाहरण है। यह इमारत 1645 ई. में बनकर तैयार हुआ। झील के मध्य स्थित अष्टकोणीय आकार का यह मकबरा चौकोर चबूतरे पर बना है जिसके चारों ओर सीढ़ियाँ हैं। इसकी छत भव्य गुंबद है जो अपने संतुलित रूप और अपने सादगी के लिए जाना जाता है। शेरशाह ने इसे अपने जीवनकाल में ही निर्मित करवाया। यह इमारत तुर्क अफगान स्थापत्य और मुगल स्थापत्य कला जिसके विषय में आपने इसी पाठ में पढ़ा है, के बीच सम्पर्क बिंदु है।

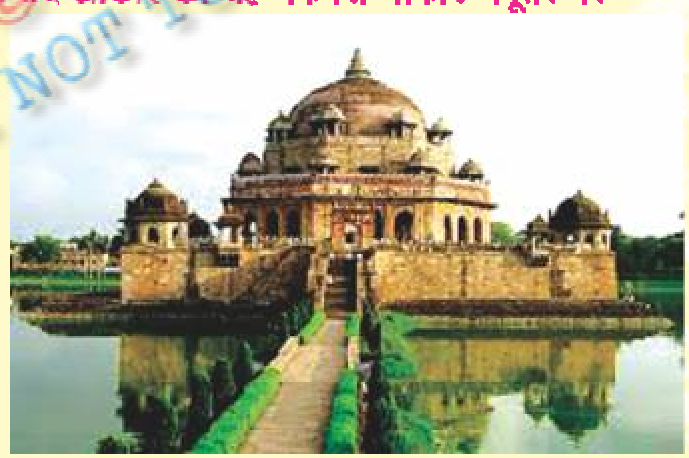

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

इसने मुगलों द्वारा निर्मित भव्य इमारतों के लिए एक मजबूत रूपरेखा पेश की थी। इस मकबरे की सम्पूर्ण विशेषता को मुगलों ने अपनी इमारतों में अपनाकर उसे विकसित किया। शेरशाह का मकबरा बिहार को स्थापत्य कला के क्षेत्र में भारत में एक विशिष्ट पहचान दिलाता है।

अभ्यास

आओ याद करें :–

1. मध्यकाल में मंदिर निर्माण की कितनी शैलियाँ मौजूद थीं।

   (क) चार (ख) पाँच

   (ग) तीन (घ) दो

2. बिहार में नागर शैली में बने मंदिरों का सबसे अच्छा उदाहरण कौन–सा है।

   (क) महाबोधि मंदिर (ख) देव का सूर्य मंदिर

   (ग) पटना का महावीर मंदिर (घ) गया का विष्णु मंदिर

3. मुसलमानों द्वारा बिहार में बनाई गई सबसे महत्वपूर्ण इमारत कौन है ?

   (क) मलिक बया का मकबरा (ख) बेगु हजाम का मसिजद

   (ग) तेलहड़ा का मस्जिद (घ) मनेर स्थित मकबरा

4. मुगल कालीन स्थापत्य कला अपने चरम पर कब पहुँचा।

   (क) अकबर के काल में (ख) जहाँगीर के काल में

   (ग) शाहजहाँ के काल में (घ) औरंगजेब के काल में

5. शाहजहाँ ने लाल किला का निर्माण दिल्ली में किस वर्ष करवाया ।

   (क) 1638 (ख) 1648

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

(ग) 1636 (घ) 1650

आओ याद करें — सही और गलत की पहचान करें :

(i) उत्तर भारत में मंदिर निर्माण की द्रविड़ शैली प्रचलित थी।

(ii) कोणार्क का सूर्य मंदिर बंगाल में स्थित है।

(iii) मुगलकालीन वास्तुकला अकबर के शासन काल में अपने चरम विकास पर पहुँचा।

(iv) शेरशाह का मकबरा सल्तनत काल और मुगल काल के वास्तुकला के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

(v) बिहार में मुस्लिम उपासना स्थल निर्माण का प्रथम उदाहरण बेगु हजाम मस्जिद है।

आइए विचार करें :

1. मंदिरों के निर्माण से राजा की महत्ता का ज्ञान कैसे होता है।

2. वर्तमान इमारत और मध्यकालीन इमारतों में उपयोग की जाने वाली सामग्री के स्तर पर क्या अन्तर आप देखते हैं ?

3. मंदिर निर्माण की नागर और द्राविड़ शैलियों में अंतर को बताएँ।

आइए करके देखें :

1. अपने आसपास किसी ऐसी इमारत या उपासना स्थल का पता लगाएँ जो शैली के स्तर पर मध्यकालीन मंदिरों, मस्जिदों या मकबरों से समानता रखता हो।

2. अपने आसपास किसी पार्क या बाग की सैर करके उसका वर्णन करें। यह भी बताएँ कि किस अर्थ में यह मुगल कालीन बाग से भिन्न है।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

6

शहर, व्यापारी एवं कारीगर

ज्योत्स्ना, अपने माता–पिता के साथ मदुरई घूमने के लिए गई हुई थी। वहाँ अनेक मंदिरों, बाजार की हलचलों, रेशम की साड़ी पर कढ़ाई करते हुए कारीगरों को देखकर उसके मन में शहर के विकास की जानकारी प्राप्त करने का विचार उत्पन्न हुआ ?

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

शहरों के अनेक रूप :

पिछले वर्ष आपने प्राचीन भारत के शहरों के बारे में पढ़ा था। आइए इस बार मध्यकालीन शहरों के बारे में जानें। उस समय प्रमुखतः चार प्रकार के शहर देखने को मिलते हैं। इनमें से कुछ शहर प्रशासन के केन्द्र थे। कुछ शहर वाणिज्यिक–व्यापारिक गतिविधियों एंव दस्तकारी के लिए मशहूर थे। कुछ दूसरे शहर तीर्थ यात्रा एंव मंदिर नगर के कारण महत्वपूर्ण थे। विदेशी व्यापार के कारण बंदरगाह (पत्तन) शहरों का विकास हुआ। कई शहर तो एक साथ ही शहरों के उपरोक्त विभिन्न रूपों को अपने में समाहित किये हुये फल–फूल रहे थे।

प्रशासनिक नगर :

ये नगर मुख्य रूप से शासक वर्ग के सत्ता केन्द्र अर्थात राजधानियाँ थीं। इन शहरों में अनेक राजमहल होते थे। इसमें शासक एवं उनके परिवार, अधिकारी, नौकर–चाकर, सैनिक रहते थे। राजमहल में सभा कक्ष बने होते थे, जहाँ से शासक (राजा) द्वारा अपनी प्रजा एवं अधीनस्थ अधिकारियों के लिए आदेश जारी किया जाता था।

शहरों में बाजार हुआ करता था जहाँ नगर निवासियों के लिए अनाज, कपड़ा, आभूषण एवं दैनिक आवश्यकता की अन्य वस्तुओं की बिक्री होती थी। दिल्ली के सुल्तानों एवं मुगल शासकों ने व्यक्तिगत एवं राजकीय आवश्यकता की वस्तुओं की आपूर्ति के लिए शाही कारखानों के निर्माण किये थे। (कारखानों के संबंध में आगे अध्ययन करेंगे) इस प्रकार के शहरों में दक्षिण भारत में कांचीपुरम, मदुरई, तंजावूर तथा उत्तरी भारत में दिल्ली, आगरा, लाहौर आदि शहरों का नाम लिया जा सकता है।

मंदिर नगर एवं तीर्थ स्थल :

दक्षिण भारत में शासक, व्यापारियों एवं धनाढ्य लोगों, के द्वारा देवी–देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा, आस्था एवं भक्ति–भाव को प्रकट करने के लिए मंदिर बनाया जाता था एवं ग्राम दान दिया जाता था। फलस्वरूप मंदिरों के पास अपार धन–संपत्ति जमा हो गया था। मंदिरों के कर्त्ता–धर्त्ता ने मंदिर के धन को व्यापारियों को ऋण देने में लगाया। इस प्रकार इन पवित्र केन्द्रों ने क्षेत्र विशेष के वाणिज्य–व्यापार को प्रोत्साहित करने में कड़ी के रूप में काम किया, क्योंकि उस समय मंदिर ही बहुमूल्य वस्तुओं के सबसे बड़े उपभोक्ता थे। धीरे–धीरे बड़ी संख्या में शिल्पकार (कारीगर) एवं व्यापारी मंदिरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए मंदिर के निकट बसते गये। दक्षिण भारत में आठवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच तंजावूर, कांचीपुरम, तिरुपति आदि मंदिर नगरों का विकास इसी तरह से हुआ।

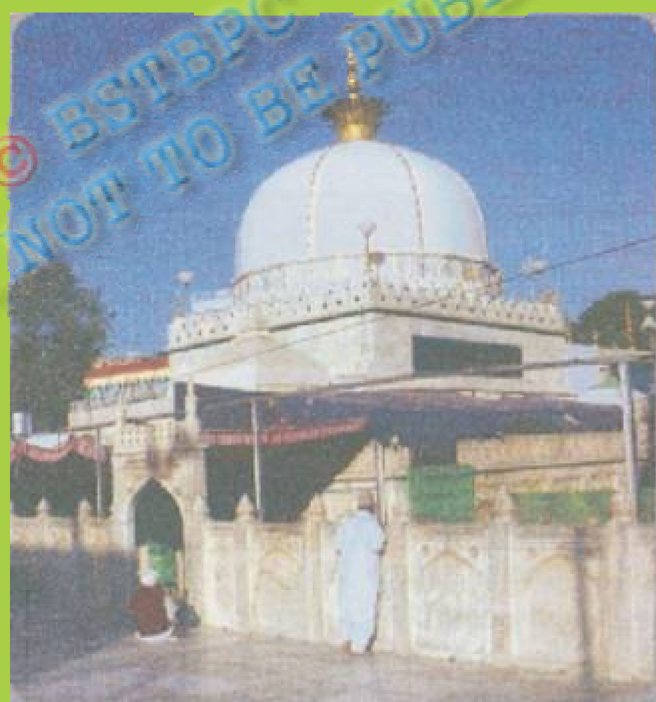

चित्र : 1 अजमेर शरीफ

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

भक्ति आंदोलन के विस्तार के कारण तीर्थ स्थलों का महत्व बढ़ा। धार्मिक आस्था के पवित्र स्थलों में विभिन्न क्षेत्रों से लोग पूजा–पाठ एवं दर्शन के लिए आया करते थे। मथुरा, काशी, वृंदावन (उत्तर प्रदेश), अजमेर, माउंट आबू (राजस्थान), सोमनाथ (गुजरात) आदि शहर तीर्थस्थल के रूप में प्रसिद्ध हैं।

वाणिज्यिक नगर :

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

चित्र : 2 नगर का एक बाजार

कुछ ग्रामीण बस्तियाँ जो अपने खास एवं उत्पादित वस्तुओं के लिए व्यापार के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरीं, वे धीरे–धीरे शहरी विकास के केन्द्र बन गये। इनका विकास व्यापार बाजार के केन्द्र के रूप में हुआ। कुछ शहर खास वस्तुओं के व्यापार के लिए विशेष बाजार समझे जाते थे। क्योंकि इनका उत्पादन स्थानीय स्तर पर होता था। उदाहरणस्वरूप–बुरहानपुर (कपास), अहमदाबाद (कपड़ा), बयाना (नील), कांचीपुरम (सूती कपड़ा), कैम्बे (रत्न बाजार) आदि।

बन्दरगाह (पत्तन) नगर :

शहरों के तैयार माल को दूसरे देशों में ले जाने के लिए समुद्र के तटीय क्षेत्रों में शासकों एवं व्यापारियों द्वारा बन्दरगाहों का विकास किया गया। अंजुवन, मनीग्रामम्, नानादेशी जैसे व्यापारिक समुदायों के कारण तटीय बस्तियों का महत्व बढ़ा। शासकों के विशेष फरमानों के द्वारा विदेशियों (यहूदियों, ईसाइयों, अरबी लोगों) को तटवर्ती शहरों में बसने एवं व्यापार करने की छूट दी गई। गुजरात, जहाँ जैन व्यापारियों का बोलबाला था, पश्चिम भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ के बन्दरगाह–भड़ौच एवं सूरत मध्यकाल में व्यापारिक केन्द्र के रूप में फले–फुले। भारत के पश्चिमी तट का अरब, फारस की खाड़ी और उसके आगे के देशों के साथ व्यापारिक संबंध रहा था। दसवीं से बारहवीं शताब्दियों के बीच में थाणा, गोवा, भटकल, मंगलूर, कोचीन जैसे बन्दरगाह का विकास लंबी दूरी के व्यापार के कारण हुआ। पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह–हुगली, मोटुपल्ली, मसूलीपटनम दक्षिण पूर्वी व्यापार का मुख्यद्वार बन गया। अरब के घोड़े के व्यापारियों के कारण कर्नाटक एवं केरल के तटीय शहरों का महत्व बढ़ गया। यूरोपीय व्यापारियों के आगमन के साथ पश्चिमी एवं पूर्वी सागरतट पर अनेक नए पत्तन और नगर विकसित हुए, जो धीरे–धीरे उनके सैनिक एवं प्रशासनिक केन्द्रों में बदल गए। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास इसके प्रमुख उदाहरण थे।

शहरी परिदृश्य :

अधिकांश शहर एक चहारदीवारी से घिरा होता था। इसमें एक या अधिक प्रवेश द्वार होते थे। शहर की प्रमुख आबादी इस चहारदीवारी के अंदर निवास करती थी। सुनियोजित ढंग से बसाये गये शहरों में बाजार अलग से बनाये

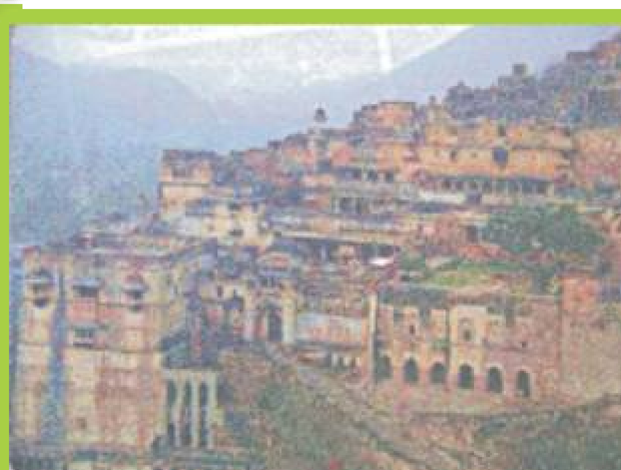

चित्र : 3 मध्यकाल का भारतीय शहर

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

जाते थे। कई बाजार किसी खास वस्तु के व्यापार के लिए विशिष्ट रूप से जाने जाते थे। शहर कई मुहल्ले में बँटे होते थे। अधिकतर मुहल्ले किसी खास जाति या उत्पादक समुदायों के नाम से जाने जाते थे। उदाहरण के लिए–कुंजड़ी मुहल्ला (सब्जी बेचने वाले), मोची बाड़ा (जूते बनाने वाले), मुहल्ला जरगरान (सुनार), कूचा रंगरेज (कपड़े रंगने वाले)।

शहरों में विभिन्न जाति, धर्म, व्यवसाय के लोग रहते थे। शासक, अमीर एवं व्यापारी शहरों के सबसे धनी लोग थे। शहर के अधिकतर लोग मध्यम वर्ग के थे। इस वर्ग में छोटे मनसबदार, कर्मचारी, दुकानदार, साहुकार, चिकित्सक (वैद्य), चित्रकार, संगीतकार, सुलेखक (पांडुलिपि की मूल प्रति लिखने वाला) शामिल थे। धार्मिक कार्यों से जुड़े लोग–पंडित, उलेमा, सूफी संत आदि शहरों के निवासी थे। इन्हें आमतौर पर राज्य से इनाम के रूप में करमुक्त भूमि अनुदान में दिया जाता था, जो शहरों के आस–पास होती थी। इसके अलावा सैनिक, नौकर, गुलाम, कारीगर (शिल्पकार) इत्यादि निम्न स्तर के लोग भी शहरों में निवास करते थे। ये लोग उच्च वर्ग के लोगों के यहाँ काम करके अपनी आजीविका चलाते थे।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

*** आप अपने निकट के शहर का भ्रमण कर वहाँ निवास करने वाले विभिन्न धर्म, जाति एवं व्यवसाय से जुड़े लोगों का पता लगायें तथा उनके खान–पान, पोशाक एवं व्यवसाय की जानकारी प्राप्त करें?**

व्यापार की दशा एवं दिशा :

शहरों का मुख्य आकर्षण वहाँ की मंडियाँ एवं बाजार थे। प्रांतों की राजधानियाँ तथा समुद्र के तट के किनारे स्थित शहरों ने व्यापार–वाणिज्य की गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन शहरों के बाजारों में देश–विदेश के व्यापारी क्रय–विक्रय किया करते थे। व्यापारी लोग शहरों की खपत से अधिक तैयार वस्तु को ले जाकर दूसरे स्थानों पर बेचने लगे।

इस काल में देश के भीतर व्यापार (आंतरिक व्यापार) के विस्तृत होने का पता चलता है। प्रत्येक कस्बा (छोटे शहर) में 'हाट' या 'बाजार' होता था। इसके अलावा नियत समय (सप्ताह या मासिक या वार्षिक) पर लगने वाले 'मेलों' में व्यापारी आते थे और वस्तुओं की खरीद–बिक्री होती थी। फेरी लगाकर माल बेचने वाले व्यापारियों का एक वर्ग था, जो लोगों की जरूरतों को पूरा करते थे। इसके अतिरिक्त राजपुताना क्षेत्र के बंजारे अनाज, नमक, चीनी, मक्खन आदि वस्तुएँ सैकड़ों बैलों पर लादकर एक–स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते थे। बंजारा लोग घुमंतू व्यापारी थे। उनका कारवां **टांडा** कहलाता था। अध्याय–3 में पढ़े होंगे कि अलाउद्दीन **खिल्जी** बंजारों का उपयोग नगर के बाजारों तक अनाज की ढुलाई के लिए करते थे। बादशाह जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा **"तुजुक–ए–जहाँगीरी" में** लिखा है कि बंजारे भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से अनाज ले जाकर शहरों में बेचा करते थे। वे मुगलों के सैनिक अभियान के दौरान सेना के लिए खाद्य वस्तुओं की ढुलाई का काम **भी** करते थे।

बंजारे

सत्रहवीं सदी के आरंभ में भारत आनेवाले एक अंग्रेज व्यापारी पीटर मुंडी ने बंजारों का वर्णन किया है–

> **"सुबह हमारी मुलाकात बंजारों के एक टांडा से हुई जिसमें 14000 बैल थे। सारे पशु गेहूँ और चावल जैसे अनाजों से लदे हुए थे।... ये बंजारे लोग अपनी घर गृहस्थी, बीवी और बच्चे अपने साथ लेकर चलते हैं। एक टांडा में कई परिवार होते हैं। उनका जीने का तरीका उन भारवाहकों से मिलता–जुलता है जो लगातार एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं। गाय बैल उनके अपने होते हैं। कई बार वे सौदागरों के द्वारा भाड़े पर नियुक्त किये जाते हैं, लेकिन ज्यादातर वे खुद सौदागर होते हैं। अनाज जहाँ सस्ता उपलब्ध है, वहाँ से वे खरीदते हैं और उस जगह ले जाते हैं जहाँ वह महँगा है। वहाँ से वे फिर ऐसी चीजें लाद लेते हैं जो किसी और जगह मुनाफे के साथ बेची जा सकती है।...**

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

टांडा में छह से सात सौ लोग हो सकते हैं।...वे एक दिन में छह या सात मील से ज्यादा सफर नहीं करते—यहाँ तक कि ठंडे मौसम में भी। अपने गाय बैलों पर से सामान उतारने के बाद वे उन्हें चरने के लिए खुला छोड़ देते हैं, क्योंकि यहाँ जमीन पर्याप्त है और उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।"

* पता करें कि आजकल गाँव से शहरों तक अनाज ले जाने का काम कैसे होता है। यह बंजारों के तौर–तरीकों से किस तरह भिन्न या समान है ?

* क्या आपके गाँव, कस्बा या शहर के आस–पास मेला का आयोजन होता है?आप यह जानकारी प्राप्त करें कि मेले में कौन–कौन सी वस्तुएँ खरीदी–बेची जाती हैं?

BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

बड़े पैमाने के व्यापार कुछ विशेष व्यापारी समुदायों तक सीमित थे। उत्तरी भारत के मुल्तानी, गुजराती, बनिया तथा दक्षिण भारत के मलय चेट्टी एवं मूरों (अरब, तुर्की, खुरासानी, मुस्लिम व्यापारी) कुछ ऐसे व्यापारी समूह थे, जिन्होंने दूर के देशों के साथ व्यापार संबंध बनाये।

भारत के पश्चिमी तट पर स्थित सूरत, भड़ौच, खंभात (कैम्बे), कालीकट, गोआ जैसी बंदरगाह पश्चिमी देशों के साथ मसाला, सूती, कपड़ा, नील, जड़ी–बूटी के व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। इन वस्तुओं को जहाजों में भरकर फारस की खाड़ी एंव लाल सागर के बंदरगाहों को भेजा जाता था। यहाँ से वेनिस एवं जेनोआ के व्यापारी इन्हें यूरोप के देशों तक ले जाते थे। बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में स्थित बंदरगाहों–सतगाँव, पुलीकट, मसुलीपटनम, नागपट्नम से कपड़ा, अनाज, खाद्य सामग्री, सूती धागा इत्यादि वस्तुएँ दक्षिण–पूर्व एशिया को भेजा जाता था।

यूरोप के देशों से ऊनी वस्त्र, सोना, चांदी भारत लाया जाता था। पूर्वी अफ्रीका से हाथी दाँत एवं मध्य एशिया से खजूर, ताजे फल, सूखे मेवे अरब व्यापारियों द्वारा भारत लाए जाते थे। चीन से रेशम तथा दक्षिण–पूर्व एशिया से मसाला भारत आने वाली

प्रमुख वस्तु थी। फारस की खाड़ी से हरमुज के रास्ते घोड़े, मोती, रेशम, कालीन आदि आयात की वस्तुएँ थीं। गुलामों को भी इसी रास्ते से लाया जाता था और उसकी खरीद–बिक्री की जाती थी।

व्यापारिक मार्ग, यातायात एवं विनिमय के साधन :

सड़कों का विस्तृत जाल बंदरगाहों को एक–दूसरे से जोड़े हुए था। इनके द्वारा बाजारों एवं नगरों के बीच वाणिज्य–व्यापार होता था। अलबेरूनी ने अपने विवरण में 15 व्यापारिक मार्गों का उल्लेख किया।

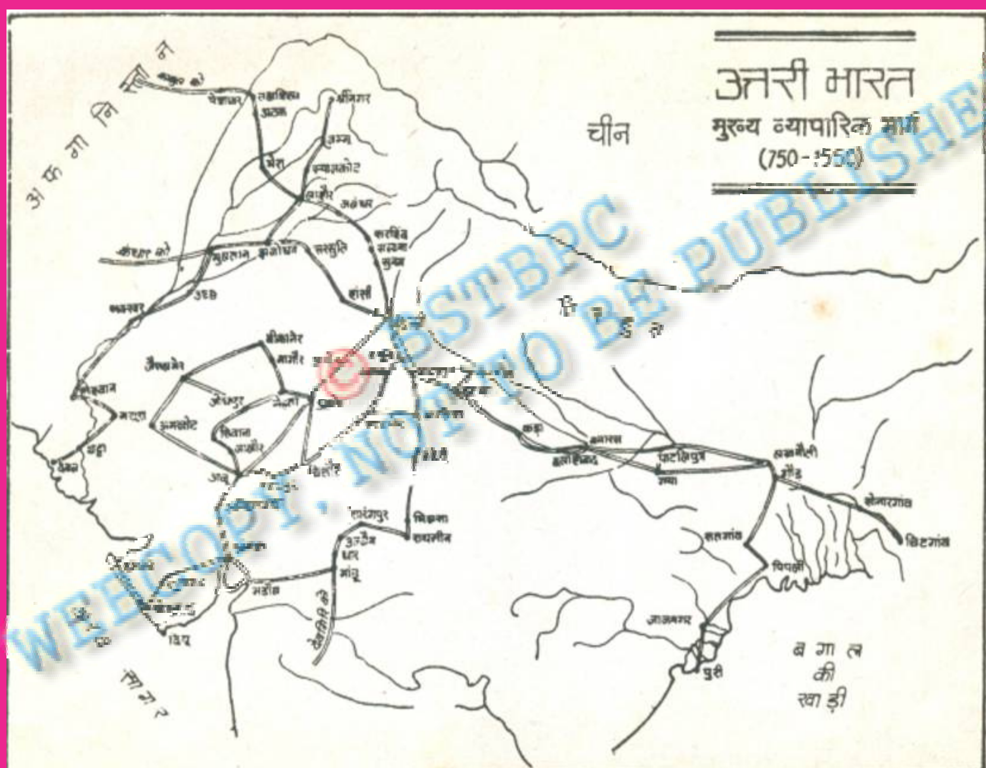

©BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

चित्र : 4 व्यापारिक मार्ग

***मानचित्र 4 देखकर विभिन्न शहरों एवं बंदरगाहों को जोड़ने वाले मार्गों की पहचान करें?**

सड़कों के अलावा भारत के पश्चिमी एवं पूर्वी तटों के साथ लगे समुद्री मार्गों ने भी विदेशी व्यापारिक सम्पर्कों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैदानी इलाकों में सामानों को लाने ले जाने का मुख्य साधन बैलगाड़ियाँ थीं। लेकिन जहाँ ये नहीं चल पाती थीं, वहाँ सामानों को ढोने के लिए बैल, खच्चर, ऊँट एवं आदमियों का इस्तेमाल किया जाता था। नावों का उपयोग जलमार्ग पर होता था, जबकि बड़े जहाज समुद्रों में चलते थे।

वस्तुओं की खरीद–बिक्री में सिक्के विनिमय के प्रमुख साधन थे। सिक्के सोने, चांदी एवं ताम्बे के बने होते थे। इस काल में दिरहम, जीतल, टंका, दिल्लीवाल, बहलोली, स्वर्ण मुहर आदि सिक्के के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। मुगल काल में रुपया और दाम मुख्य मुद्रा थी। व्यापारियों का एक वर्ग सर्राफों का था, जो व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। सर्राफ सिक्के की धातुगत शुद्धता और वजन की जाँच तथा धातु मुद्रा की विनिमय दर निर्धारित करते थे। वे बैंकर के रूप में लोगों के पैसे का लेन–देन भी करते थे और 'हुंडियाँ' भी जमा करते थे। हुंडी कागज पर लिखा एक वचन पत्र होता था, जिसके द्वारा किसी स्थान और समय पर लिखी गई राशि देने की व्यवस्था की जाती थी। इसका आरंभ वाणिज्यिक कार्यों के लिए मुद्रा के रूप में अधिक धन को लेकर जाने वालों के खतरे को ध्यान में रखकर हुआ। सभी विदेशी व्यापारियों ने भारतीय साहुकारों की ईमानदारी की प्रशंसा की है।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

व्यापारियों का संगठन :

व्यापारी समुदाय ने अपने हितों की रक्षा के लिए व्यापारी संघ बनाये। दक्षिण भारत में कई व्यापारिक संघों का उदय हुआ। अभिलेखों में इन संगठनों को 'समाया' कहा गया है। इसका आशय है–सदस्यों के बीच सहमति से पैदा हुआ संगठन। प्रत्येक व्यापार संघ की एक सभा होती थी। संघ आमतौर पर एक प्रमुख के अधीन काम करती थी, जिसका चुनाव संघ के सदस्य करते थे। संघ अपनी सदस्यता और कार्य करने के तरीकों के लिए स्वयं नियम कानून बनाती थी। यदि सदस्य संघ के नियमों को तोड़ते थे तो वह सदस्यों को सजा दे सकता था या उनको निकाल सकता था। संघ के प्रमुख

अपने व्यापारी सदस्यों के प्रतिनिधि के रूप में राजा से मिलकर बाजार में बिकने वाली वस्तुओं पर लगने वाली चुंगी अथवा कर को तय करने का काम करता था। वे वस्तुओं के दाम भी तय करते थे। दक्षिण भारत में दो महत्वपूर्ण व्यापार संघ थे—नानादेशी एवं मनीग्रामम्। इनका व्यापार चीन, श्रीलंका एवं दक्षिण पूर्वी एशिया तक फैला हुआ था।

***आप शिक्षक की मदद से पता लगायें कि वर्तमान समय में किसी व्यापार—व्यवसाय से संबंधित, क्या ऐसे संघ कायम हैं?आप ऐसे संघों के गठन एवं कार्यकलाप की जानकारी प्राप्त करें?**

नगरों के कारीगर :

मध्ययुगीन शहरों में कारीगर (शिल्पी) अपने व्यवसाय को बरकरार रखे हुये थे। अधिकांश व्यवसाय स्थानीय रूप में थे, जो पीढ़ी—दर—पीढ़ी हस्तांतरित किये जाते रहे थे। कई शहर अपने विशिष्ट उत्पादों के लिए मशहूर थे। इसके अतिरिक्त राजकीय कारखाने भी थे, जो दिल्ली के सुल्तानों एवं मुगल बादशाहों के द्वारा स्थापित किये गये थे। इन कारखानों में शासक एवं उनके परिवार तथा राज्य की आवश्यकता की वस्तुएँ बनाई जाती थीं।

चित्र : 5 वस्त्र पर कढ़ाई करता हुआ कारीगर

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

मुगल कारखाना :

सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी यात्री बर्नियर मुगल राजधानी दिल्ली आया था और उसने कारखानों में काम होते देखा। वह लिखता है कि—"गढ़ी के भीतर अनेक स्थानों पर बड़े—बड़े कमरे देखे जा सकते हैं, जिन्हें कारखाने या कारीगरों की कर्मशालाएँ कहा जाता है। किसी एक कमरे में एक उस्ताद की निगरानी में कारीगर कशीदाकारी करने में लगे रहते हैं, दूसरे कमरे में स्वर्णकार, तीसरे कमरे में चित्रकार, चौथे में लाख की पालिस करने वाले, पाँचवें में जड़िये, दर्जी, मोची, छठे में रेशम बनाने और कलावात का काम करने वाले अर्थात् ऐसी बारीक मलमल बनाने वाले, जिनपर खूबसूरत कढ़ाई की जाती है। कारीगर हर रोज सुबह अपनी—अपनी कर्मशालों में आते हैं और सारा दिन वहाँ काम करते हैं, शाम को अपने घर लौट जाते हैं। कशीदा करने वाला अपने बेटे को कशीदाकार, स्वर्णकार अपने बेटे को स्वर्णकार और शहर का हकीम अपने बेटे को हकीम होने का प्रशिक्षण देता है। कोई भी अपने धंधे या व्यवसाय से बाहर विवाह संबंध स्थापित नहीं करता। इस प्रथा का पालन करने में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समान रूप से कट्टर हैं।"

***बर्नियर द्वारा वर्णित मुगल कारखानों में करने वाले कारीगरों की सूची बनाएँ और सोचकर बताएँ कि कारखानों में बनी वस्तुओं का उपयोग किस वर्ग के लोग करते थे?**

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED
BSTBPC

भारत मे वस्त्र निर्माण प्राचीन काल से ही एक प्रमुख व्यवसाय था। ढाका का मलमल सारे संसार में अपनी बारीकी के लिए प्रसिद्ध था। दक्षिण भारत में कांचीपुरम एवं मसूलीपटनम सुती वस्त्र निर्माण के मुख्य केन्द्र थे। खम्भात के रेशमी कपड़े की माँग इतनी अधिक थी कि अलाउद्दीन खिलजी को उसकी बिक्री नियंत्रित करनी पड़ी थी। कश्मीर ऊनी शाल के लिए विख्यात था। बर्तनों पर सोने—चांदी के सुंदर जड़ाऊ कार्य के लिए बीदर प्रसिद्ध था। पांचाल समुदाय, जिसमें सुनार, कसेरे, लोहार,

राजमिस्त्री, बढ़ई शामिल थे, मंदिरों, राजमहलों, भवनों के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। कांस्य की बनी चोलकालीन मूर्तियाँ कारीगरी (शिल्पकारी) का उत्कृष्ट नमूना है। चोल कांस्य मूर्तियाँ **लुप्तमोम विधि** से बनाई जाती थी।

चित्र : 6 बीदरी शिल्प का एक नमूना

लुप्तमोम तकनीक

इस तकनीक के अंतर्गत मोम की एक मूर्ति बनाई जाती है। इसके ऊपर मिट्टी की परत चढ़ाई जाती है। इसके बाद इसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। सूखने के बाद उसे गर्म किया जाता है, जिससे मोम पिघल जाता है और साँचा रह जाता है। साँचे में पिघली हुई धातु भर दिया जाता है। धातु ठंडी होकर जब ठोस हो जाती है तो मिट्टी को सावधानी से हटा दिया जाता है और उसमें से निकली मूर्ति को पालिस कर चमका दिया जाता है।

चित्र : 7 नटराज शिव की कांस्य प्रतिमा

*** क्या आज धातु की मूर्तियाँ इसी तकनीकी से बनाई जाती हैं?पता लगाएँ?**

यूरोप के देश, व्यापारिक उद्देश्य से भारत के मसालों एवं कपड़ों की तलाश में लगे हुये थे। 1498 ई॰ में पुर्तगाल के निवासी वास्को–डी–गामा आशा अंतरीप की यात्रा करते हुये कालीकट पहुँचा। पुर्तगाल, भारत में व्यापारिक पैठ जमाने वाला पहला यूरोपीय देश था। पुर्तगाल ने अपने मजबूत एवं श्रेष्ठ जहाजी शक्ति का इस्तेमाल कर हिन्द महासागर से लाल सागर के समुद्री मार्ग पर एकाधिकार जमा लिया। पुर्तगाली व्यापारियों ने भारत के तटीय क्षेत्रों गोआ, कालीकट, कोचीन, हुगली, मयलापुर में नौ–सैनिक अड्डे स्थापित किये। कालीमिर्च, नील, शोरा, सूती कपड़े, घोड़े उनके व्यापार की मुख्य वस्तु थी। उन्होंने अपने व्यापारिक एकाधिकार को बनाये रखने के लिए कार्ट्ज (पारपात्र) जारी करने की व्यवस्था प्रारंभ की। यह एशियाई समुद्र में जहाजों के आने–जाने के लिए एक प्रकार का आज्ञा पत्र था। इसके न होने पर माल लूट कर जहाज को जब्त कर लिया जाता था। आज्ञा पत्र (कार्ट्ज) देने के बदले एक निश्चित धनराशि ली जाती थी।

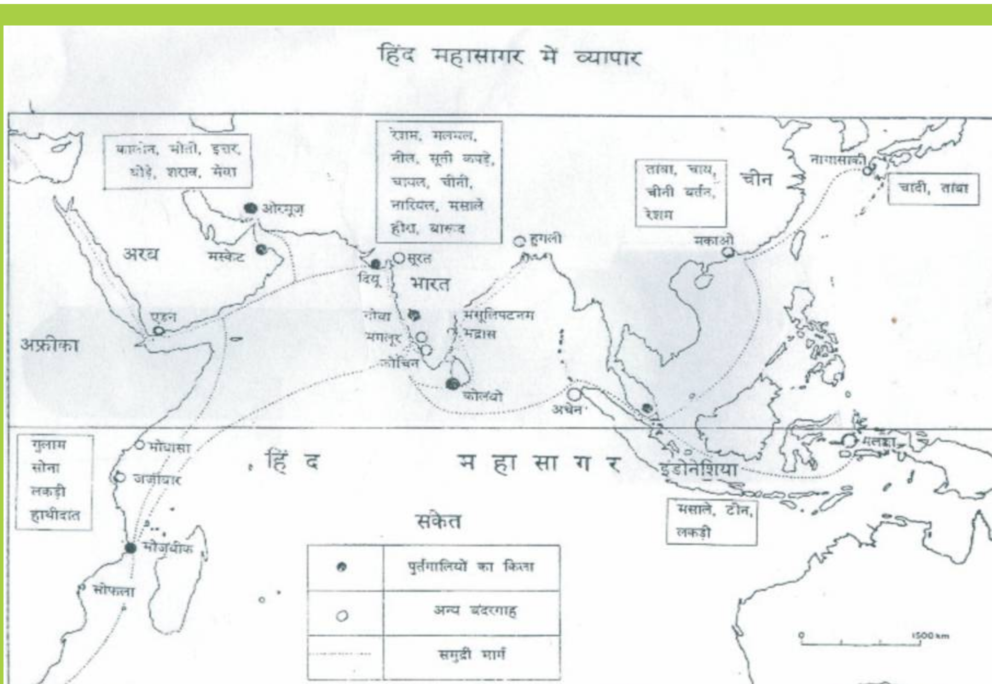

चित्र : 8 हिन्द महासागर में व्यापार

सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप के अन्य देश–इंग्लैंड, हॉलैण्ड (डच) एवं फ्रांस के

व्यापारियों ने भारत के साथ व्यापार करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी बनाई। इन यूरोपीय कंपनियों ने व्यापार की सुविधा के लिए भारत के विभिन्न शहरों एवं तटीय इलाकों में कोठियों (गोदाम) की स्थापना की। व्यापारिक कोठियों की स्थापना के लिए उन्हें भारतीय शासकों की अनुमति लेनी पड़ती थी। यूरोपीय कंपनियों के व्यापार के प्रसार से पुर्तगालियों के व्यापारिक क्रियाकलाप कम होने लगे। यूरोपीय कंपनियाँ अपने व्यापारिक स्वार्थ के लिए आपस में संघर्ष करने लगीं। उन्हें भारतीय शासकों एवं व्यापारियों से भी मुकाबला करना पड़ता था। अन्ततः इस संघर्ष में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी (इंग्लैण्ड के व्यापारी) सफल रही और भारत में सर्वाधिक सफल राजनीतिक एवं वाणिज्यिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आयी।

ईस्ट इंडिया कंपनी:—
इसके अंतर्गत कई व्यापारी एक साथ मिलकर साझेदारी में कंपनी बनाते थे। किसी भी व्यापारिक गतिविधि से जुड़े लाभ—हानि में वे सभी बराबर के साझेदार होते थे।

यूरोपीय व्यापारियों के आगमन के बाद यूरोप के देशों में भारतीय सूती कपड़े की माँग में तेजी आई। अधिक—से—अधिक लोगों ने वस्त्र निर्माण से संबंधित कार्य—कताई, बुनाई, धुलाई, आदि व्यवसाय को अपना लिया। लेकिन इस काल में दस्तकारों की स्वतंत्रता घटने लगी। यूरोपीय कंपनियाँ भारत के दस्तकारों (कारीगरों) को अग्रिम राशि देती थीं तथा उनसे उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करवाती थीं जिनकी मांग यूरोप के देशों में अधिक थी। इस कार्य में भारतीय व्यापारी यूरोपीय कंपनियों के एजेंट के रूप में काम करते थे। इसे 'दादनी' व्यवस्था कहते थे।

मानचित्र 8 को देखें और बतायें कि भारत से विदेशों को जानेवाली एवं विदेशों से भारत आनेवाली कौन—सी वस्तुएँ थीं ?

शहरों के बदलते स्वरूप :

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करने के लिए कलकत्ता, मद्रास, बम्बई में कोठियों का निर्माण किया। यहाँ आयात–निर्यात किये जाने वाली वस्तुओं को रखा जाता था। कोठियों में कम्पनी के दफ्तर एवं कर्मचारियों के लिए आवास भी बने होते थे। सुरक्षा के लिए कोठियों की घेराबंदी की जाती थी। किलेबंद कोठियों के बाहर भारतीय व्यापारियों, दस्तकारों एवं शिल्पकारों को बसाया गया जो कम्पनी के लिए व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में कलकत्ता, मद्रास, बम्बई बड़े शहरी केन्द्र के रूप में उभरे, जो आज भारत के प्रमुख महानगर हैं।

चित्र : 9 कोलकाता स्थित अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी की व्यापारिक कोठी (गोदाम) फोर्ट विलियम का चित्र

पटना की पृष्ठभूमि: एक नजर

वर्तमान पटना का इतिहास प्राचीन पाटलिपुत्र से जुड़ा है। व्यापारिक महत्व के कारण पट्टन (शहर या नगर) से पटना शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। मध्यकाल में पटना अजीमाबाद नाम से भी काफी प्रचलित रहा। अन्य मध्यकालीन नगरों के समान पटना दीवारों से घिरा था, जिसमें कई छोटे–बड़े दरवाजे लगे थे। पटनासिटी में पश्चिमी एवं पूर्वी दरवाजा आज भी देखा जा सकता है।

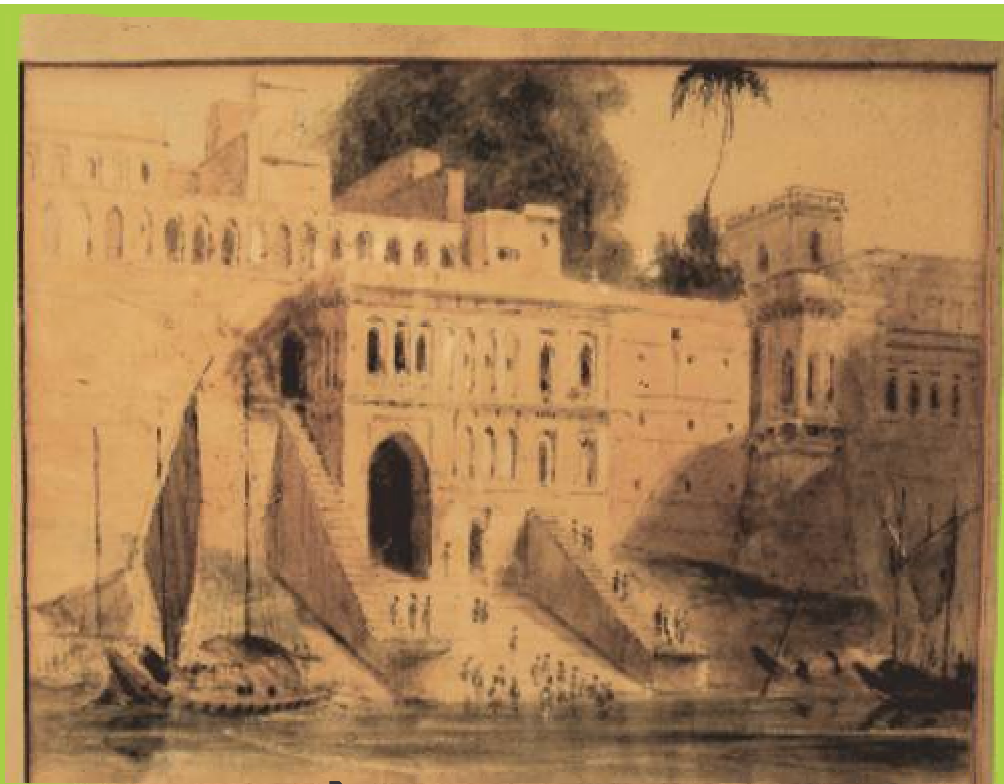

चित्र : 10 गंगा तट पर पटना

अफगान–मुगल काल में बिहार सूबे का एक नाजीम या सूबेदार होता था। 1704 ई० में औरंगजेब का पोता अजीम–उस–शान बिहार का सूबेदार बना। अजीम ने पटना को एक नए ढंग से बसाया और इसे अजीमाबाद का नया नाम दिया। उसने मुहल्लों को बसाने का काम इस प्रकार से किया कि अजीमाबाद की सुंदरता बढ़ गई। लोदियों के मुहल्ले का नाम **लोदीकटरा** पड़ा। इस मुहल्ले के पास मुगल सेना के अधिकारी जहाँ रहते थे, उसे **मुगलपुरा** कहा गया। शेरशाही परिवार के रहने की जगह **कैवां शिकोह** के नाम से जाना जाता था। उलेमा, साहित्यकार, कवि, शायर, का मुहल्ला **मैदाने फसाहत** के नाम से

बसा। सद्र–उस–सुदूर (मुख्य न्यायाधीश) का निवास स्थान **सदर गली** के नाम से मशहूर है। हिन्दू उमरा (अधिकारी) के कारण दीवान मुहल्ला आबाद हुआ।

पटना में मुहल्लों का नाम पेशे के आधार पर पड़ा। उनमें से एक मुहल्ला ठठेरी बाजार है। तांबे एवं पीतल के बर्तन बनाने वाले सैकड़ों परिवारों के कारण इस मुहल्ले का नाम **ठठेरी बाजार** पड़ा। जिस गली में सेना के लिए तीर और कमान बनाने वाले रहते थे, उसका नाम **कमानगर की गली** कहलाता था आज यह कमंगर गली के नाम से जाना जाता है। पान बेचने वालों का मुहल्ला **पानदारी**, नमक का बाजार **नूनगोला**, चावल का बाजार **चौहट्टा**, गुड़ का बाजार **गुरहट्टा** आदि।

सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज एवं डच व्यापारिक कंपनियों के प्रयास से पटना एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन चुका था। अनेक जैन व्यापारी पटना में बसना शुरू कर दिये थे, जिनमें सबसे धनी व्यापारी हीरानंद शाह था। यूरोपीय व्यापारी के माध्यम से पटना का व्यापार मध्य एशिया, पश्चिम एशिया, अफ्रीका के तटवर्ती क्षेत्रों और यूरोप के देशों के साथ उन्नत रूप में होता था। यूरोप के व्यापारियों की अभिरुचि सूती वस्त्र, नील, एवं शोरे की प्राप्ति में थी। अंग्रेजों द्वारा पटनासिटी के गुलजारबाग मुहल्ले में गंगा नदी के किनारे एक व्यापारिक कोठी 1620 ई० में बनवायी गयी थी। इस कोठी का मुख्य द्वार गंगा नदी की ओर था। यह कोठी ऊँची दिवारों से घिरी थी। पटना से अंग्रेज शोरा प्राप्त करते थे, क्योंकि यूरोप में इसकी खूब मांग थी और इससे बारूद बनाया जाता था। पटना के आसपास के क्षेत्रों से शोरा इकट्ठा किया जाता था और इसे नाव द्वारा गंगा के रास्ते हुगली, फिर वहाँ से यूरोप ले जाया

SOL www.absol.in

जाता था।

पटना से चावल और चीनी बंगाल के बाजारों में जाता था। पटना के निकट लखावर कपड़ा उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ देश–विदेश के व्यापारी आते थे और माल खरीदते थे। बिहार में बड़े पैमाने पर रेशम वस्त्र बनाया जाता था। 1620–21 ई0 में अंग्रेजों द्वारा पटना में रेशम से धागे बनाने के कारखाना का निर्माण किया गया था।

1580 ई0 में मुगल बादशाह अकबर ने टकसाल (सिक्का बनाने का केन्द्र) की स्थापना की थी। 1705 ई0 में अजीम के समय में यहाँ बनाये गये सिक्कों पर अजीमाबाद शब्द का प्रयोग किया गया। पटना शहर की पूर्वी सीमा पर मालसलामी मुहल्ला, मुगल काल में व्यापारिक सामान या माल पर चुंगी (सलामी) की वसूली का केन्द्र था।

अभ्यास

फिर से याद करें।

1. शासक, व्यापारी एवं धनाढ्य लोग मंदिर क्यों बनाते थे?
2. शहरों में कौन–कौन लोग रहते थे?
3. व्यापारिक वस्तुओं के यातायात के क्या साधन थे?
4. सत्रहवीं शताब्दी में किन यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों का भारत में आगमन हुआ?

5. सुमेल करें?

(क) मंदिर नगर	(i) दिल्ली
(ख) तीर्थ स्थल	(ii) तिरूपति
(ग) प्रशासनिक नगर	(iii) गोआ
(घ) बन्दरगाह नगर	(iv) पटना

आइए समझें :–

6. मध्यकालीन भारत में आयात–निर्यात की वस्तुओं की सूची बनाइए?
7. भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के आगमन के कारणों को रेखांकित करें?
8. मंदिरों के आस–पास शहर क्यों विकसित हुए?
9. लोगों के जीवन में मेले एवं हाट की भूमिका का वर्णन करें?

आइए विचार करें :

10. इस अध्याय में वर्णित शहरों की तुलना अपने जिले में स्थित शहरों से करें?क्या दोनों के बीच कोई समानता या असमानता है?
11. धातुमूर्ति निर्माण के लुप्तमोम तकनीक के क्या लाभ हैं ?

आइए करके देखें।

12. आप अपने निकट के तीर्थस्थल का भ्रमण कर पता लगाएँ और बताएँ कि लोग वहाँ क्यों जाते हैं, वहाँ क्या करते हैं?क्या उस स्थल के आस–पास दुकानें हैं और वहाँ क्या खरीदा और बेचा जाता है?
13. आप अपने गाँव या शहर में काम करने वाले कारीगरों (शिल्पियों) का पता लगाएँ और यह जानकारी प्राप्त करें कि वे वस्तुओं का निर्माण (उत्पादन) किस तरीके से करते हैं?

7

सामाजिक–सांस्कृतिक विकास

बच्चों! आपने अपने गाँव या मोहल्ले में भिन्न–भिन्न जाति, धर्म या सम्प्रदाय के लोगों को एक साथ रहते हुए देखा होगा। क्या आप बता सकते हैं कि उनके खान–पान, रहन–सहन, सोच–समझ के स्तर पर कौन–कौन सी समानताएँ एवं असमानताएँ हैं? आपको यह जानने का प्रयास जरूर करना चाहिए कि ये अलग–अलग जाति एवं धर्म के होते हुए भी इतने करीब कैसे आए ?

विभिन्न धर्मों के समानताओं एवं असमानताओं को चार्ट के माध्यम से बताएँ।

धर्मों के नाम	समानता	असमानता

WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

इस्लाम का भारतीय संस्कृति से मेल–जोल

भारत में प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक मेल–जोल की समृद्ध परम्परा रही है। जैसा कि आप वर्ग 6 में पढ़ चुके हैं। यहाँ प्राचीन काल में आर्यों, शकों, कुषाणों एवं हूणों आदि का आगमन हुआ। वे सभी बाहरी देशों से भारत आए और यहाँ के रीति रिवाजों

को स्वीकार कर यहीं के होकर रह गए।

मध्यकाल में भारत में आकर बसने वाला सबसे महत्वपूर्ण वर्ग मुसलमानों का था। इस्लाम धर्म का अभ्युदय अरब प्रायद्वीप में सातवीं सदी में हुआ। इसके पूर्व भी अरबों का भारत के तटवर्ती क्षेत्रों के साथ व्यापरिक संपर्क था, जो मुस्लिम अरबों के साथ भी बना रहा। आठवीं शताब्दी के आरंभ में मुहम्मद–बिन–कासिम के नेतृत्व में सिंध एवं दक्षिण पश्चिमी पंजाब में अरबों का शासन स्थापित हुआ, किन्तु अरबों का राजनीतिक वर्चस्व सीमित क्षेत्रों में और अल्पकाल तक ही रहा। ग्यारहवीं शताब्दी में गजनी के शासक महमूद द्वारा पश्चिमोत्तर सीमांत के रास्ते सैनिक अभियान की श्रृंखला आरंभ की गई। इन अभियानों का मुख्य उद्देश्य भारत का धन लूटना था। परन्तु इनका एक परोक्ष परिणाम यह हुआ कि पंजाब के क्षेत्र में तुर्कों की सत्ता स्थापित हुई और लाहौर का नगर उनकी राजधानी बनी। राजनीतिक नियंत्रण का और अधिक विस्तार 12 वीं सदी के अंत तक हुआ जब मुहम्मद गोरी ने दिल्ली और अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर अपना राजनीतिक प्रभुत्व उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में स्थापित किया। 13वीं सदी के आरंभ में पंजाब, सिंध, राजपुताना के कुछ क्षेत्र एवं दोआब के मुख्य भाग तक मुस्लिम शासकों का नियंत्रण स्थापित हो चुका था।

1206 में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। इसी अवधि, अर्थात 8वीं से 12वीं सदी, में इस्लामी जगत के साथ भारत के संबंध बौद्धिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर बने। महमूद के समकालीन मध्य एशियाई विद्वान अलबेरूनी ने हिन्दुओं के धर्म, विज्ञान और सामाजिक जीवन से संबंधित अपनी सुप्रसिद्ध रचना ''किताब–उल–हिन्द'' लिखी। दूसरी ओर अनेक सूफी संत एवं धर्म प्रचारक भी भारत के विभिन्न नगरों में आकर बसे जिनके माध्यम से भारतीय जन साधारण को इस्लाम धर्म के उद्देश्यों और विशेषताओं की जानकारी मिली। इनमें एकेश्वरवाद, समानता और बन्धुत्व जैसे सिद्धान्तों ने भारत के उन वर्गों को विशेष रूप से प्रभावित किया जो सामाजिक भेदभाव और उत्पीड़न का शिकार हुए थे। अतः इन दोनों धर्मों के माननेवालों के बीच पारस्परिक आदान–प्रदान और समन्वय का वातावरण बना।

तेरहवीं सदी में तुर्क–शासन की स्थापना के बाद तुर्कों ने भारत के बड़े क्षेत्रों पर

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

अपना नियंत्रण स्थापित किया। संपूर्ण उत्तर भारत के साथ–साथ दक्षिण भारत को भी जीतने का प्रयास उनके द्वारा किया गया। इन्होंने अपने विजयों एवं सैन्य अभियानों से भारत में राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया।

मुस्लिम शासकों द्वारा भारत में स्थापित राजनीतिक एकता का सबसे बड़ा प्रभाव हिन्दू भक्ति संतों एवं सूफी संतों पर पड़ा। इनलोगों के द्वारा बिना किसी रुकावट के पूरे भारत में अपने विचारों को फैलाया गया। इन पर एक दूसरे के विचारों का प्रभाव भी देखने को मिलता है। जैसा कि आप इसी अध्याय में आगे देखेंगे।

तुर्क सत्ता की स्थापना के साथ ही इस्लाम मानने वाले इरानी, अफगानिस्तानी, खुरासानी लोग भी भारत में बड़ी संख्या में आकर बसे। इनलोगों ने मंगोलों के भय से भारत की ओर अपना रुख किया।

तुर्क के राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना के तीन–चार सौ साल बाद मुगल काल में अकबर द्वारा अपनाई गई उदार धार्मिक नीतियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के करीब लाने का उचित माहौल प्रदान किया। हालांकि इन नीतियों को बाद के शासकों ने पूर्णतः नहीं अपनाया।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

क्या आप जानते हैं?

बिहार में तुर्कों की सत्ता के पहले ही सूफियों का आगमन हो चुका था। मनेर में आकर बसने वाले इमाम ताजफकीह बिहार के पहले सूफी संत थे। इनके अतिरिक्त हाजीपुर, बिहारशरीफ, फुलवारीशरीफ, अरवल, मनोरा (ओबरा), आदि जगहों पर अनेक सूफी संतों ने अपनी खनकाह की स्थापना की जिसे आज भी आप किसी न किसी रूप में देख सकते हैं।

भारतीयों और इस्लाम के मानने वालों के बीच आपसी मेलजोल से इस्लामी रीति–रिवाज, धर्म, शिल्प, पहनावा और पकवान आदि को भी भारतीयों ने अपनाया।

आप कुर्ता–पायजामा, सलवार–कमीज, अचकन, लुंगी आदि लोगों को पहनते देखे होंगे। इनके आने के पहले भारतीय सिर्फ धोती या साड़ी ही पहनते होंगे। इस्लाम के अनुयायी हलवा और समोसा जैसे स्वादिष्ट व्यंजन भी अपने साथ लेकर आए। इस्लामी कारीगरों ने भवन निर्माण के कुछ नए तरीकों को भी लाया जिसे आप पांचवें अध्याय में विस्तार से देख चुके हैं।

भारत में मुसलमानों के आगमन के पूर्व लेखन–कार्य पत्तों, पेड़ की छालों, रेशमी कपड़ों, पत्थरों एवं धातु की चादरों पर किया जाता था। अरबों के द्वारा ही यहाँ कागज बनाने की तकनीक लाई गई और कागज पर लिखने का काम शुरू किया गया। जबकि अरबों ने भी इसे चीनियों से सीखा था।

मुस्लमानों के आगमन के कारण भारत में फारसी एवं अरबी भाषा का महत्व बढ़ा। राज–काज की भाषा के रूप में फारसी का इस्तेमाल होने लगा। फलतः हिन्दू जनता ने भी अरबी–फारसी को सीखना प्रारंभ कर दिया। भारतीय दर्शन, ज्योतिष, एवं गणित की अनेक पुस्तकों का अरबी–फारसी में अनुवाद किया गया। मुस्लिम विद्वानों द्वारा हिन्दी में भी कई काव्य रचे गए। अमीर खुसरो जैसे विद्वान ने हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। फारसी, तुर्की, ब्रज और खड़ी बोली के मिश्रण से एक नई भाषा उर्दू का जन्म हुआ। इस तरह उर्दू भारतीय और इस्लामी संस्कृति के समन्वय का सही प्रतीक बनी।

भारत में इस्लाम के आगमन के पहले तकली से सूत काता जाता था जिसमें काफी समय लगता था लेकिन मुसलमान अपने साथ चरखा लेकर आए, जिससे वस्त्र के निर्माण में बहुत सहूलियत हुई।

आप बता सकते हैं कि इस्लाम धर्म अपने साथ खाने–पीने और पहनने की कौन–कौन सी चीजें साथ लेकर आया?

कुछ भारतीयों के द्वारा इस्लाम धर्म को अपनाने से भी परिस्थितियाँ बदलने लगीं। भव्य मंदिरों की तरह सुन्दर–सुन्दर मस्जिदें भी बननी प्रारंभ हुईं। पूजा–अर्चना करने वालों के साथ–साथ नमाज पढ़ने और रोजा रखने वालों की भी संख्या बढ़ी।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

इस्लाम के मानने वालों ने भी हिन्दू समाज के रीति–रिवाजों एवं रस्मों को अपनाया। जिनलोगों ने धर्म–परिवर्तन के बाद इस्लाम को अपनाया, उनके रहन–सहन एवं पारम्परिक कार्यो में हिन्दू धर्म की कई विशेषताएँ मौजूद थीं। जन्म–मृत्यु, शादी–विवाह आदि के अवसर पर मनाए जाने वाले उत्सव हिन्दू रीति–रिवाज से प्रभावित थे। सूफी संतों के मजार पर जियारत एवं उर्स का मेला हिन्दूओं के तीर्थस्थलों पर होने वाले उत्सव से प्रभावित थे। जिस तरह से हिन्दू अपने देवी–देवताओं की धरती पर पूजा अर्चना हेतु जाते थे अब मुसलमान एवं अन्य समुदाय के लोग भी सूफियों के मजारों पर चादर चढ़ाने जाने लगे।

आप अपने शिक्षक या माता–पिता की सहायता से पाँच–पाँच हिन्दू देवी–देवताओं, सूफी एवं भक्ति संतों से जुड़े स्थलों की सूची बनाइए।

क्रमांक	हिन्दू		मध्यकालीन	
	देवी	देवता	सूफी संत	भक्ति संत
1.				
2.				
3.				
4.				
5.				

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

इसे भी जानें

इस्लाम धर्म का जाति–पाति में विश्वास नहीं था फिर भी हिन्दू धर्म से इस्लाम धर्म अपनाने वाले उच्च जाति के लोगों को अशराफ और निम्न जाति के लोगों को अजलाफ कहा जाता था। धीरे–धीरे मुसलमानों के बीच भी जातीय विभाजन शेख, सैयद, मलिक,पैठान, अंसारी, जुलाहा आदि के रूप में होने लगा। इस तरह हिन्दू और मुसलमानों के बीच पारस्परिक मिलन से एक सामाजिक संस्कृति का

विकास हुआ।

भक्ति आन्दोलन

अभिनव अपने दादाजी के साथ गाँव के मंदिर में आयोजित भजन–कीर्तन में शामिल होने गया हुआ था। वहाँ भजन–कीर्तन में शामिल लोगों को देखकर वह अपने दादा जी से पूछता है कि भगवान के प्रति भक्ति की यह परम्परा कब से शुरू हुई? दादा जी उसकी भावनाओं को समझकर बताते हैं कि भारत में बहुत पहले यह भक्ति संतों के द्वारा शुरू की गई।

ईश्वर के प्रति भक्ति के संबंध में जानने की अभिनव की जिज्ञासा और बढ़ती गई जिसे उसके शिक्षक ने शान्त करने का प्रयास किया।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

भक्ति से आप क्या समझते हैं

भक्ति का अर्थ ईश्वर पर पूर्णतः भरोसा एवं उनपर विश्वास करना है। उन्हें ही संसार का कर्ता–धर्ता मानकर खुद को उनकी शरण में समर्पित करना है।

ईश्वरीय अनुराग की परम्परा

भारत में भक्ति या ईश्वर के प्रति अनुराग की परम्परा प्राचीन काल से ही चलती आ रही है। जब बड़े–बड़े राज्यों का उदय नहीं हुआ था और समाज कबीलों में विभक्त

था, हर कबीले के लोग अपने–अपने देवी–देवताओं की आराधना किया करते थे। जैसा कि आप वर्ग 6 की कक्षा में नए प्रश्न, नए विचार के अन्तर्गत पुनर्जन्म एवं परमेश्वर (सर्वशक्तिमान ईश्वर) के प्रति भक्ति भाव के बारे में पढ़ चुके हैं। भक्ति के प्रति श्रीमद्भागवत में यह विचार उल्लिखित है कि मुनष्य भक्तिभाव से परमेश्वर की शरण में जाकर पुनर्जन्म के झंझट से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह विचार प्रारंभिक सदी में लोकप्रिय हो चुका था। लोग अपने–अपने आराध्य देवी–देवताओं की भक्ति करते थे। शिव, दुर्गा, विष्णु आदि की आराधना करने वाले लोगों के विचार पौराणिक कथाओं के अंग बनते गये। पुराणों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि भक्त भले ही किसी जाति का हो, वह सच्ची भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है। भक्ति की इस विचारधारा ने हिन्दू धर्मावलंबियों के साथ–साथ बौद्ध एवं जैन मतावलम्बियों को भी प्रभावित किया।

आप पिछली कक्षा में पढ़ चुके हैं कि भक्ति की शुरुआत मातृदेवी एवं शिव की पूजा के साथ हड़प्पा सभ्यता से ही शुरू हो जाती है जबकि भक्ति की विचारधारा वैदिक काल से शुरू होती है। वेदों एवं उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा के बीच सीधा संबंध स्थापित करने का विचार प्रस्तुत किया गया ताकि जीव को पुनर्जन्म से मुक्ति मिल सके। धार्मिक बाह्याडम्बरों को भी त्यागने का विचार उपनिषदीय विचारधारा की ही देन है।

WEBCOPY © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

भक्ति आंदोलन के कारण

मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन के उद्‌भव एवं विकास में कई परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं। वैदिक रीति–रिवाज, पूजा–पाठ, धार्मिक–कर्मकाण्ड काफी महंगा हो गया था। पुरोहित वर्ग अपने लाभ के लिए वैदिक कर्मकाण्डों को काफी खर्चीला बना चुके थे। इन परिस्थितियों में सर्व–साधारण धार्मिक कार्यों में बढ़ते हुए खर्च का बोझ उठाने में असमर्थ था। दलितों एवं निम्न जाति के लोगों को समाज में छुआ–छूत एवं ऊँच–नीच के भेद–भाव के कारण शोषित एवं अपमानित होना पड़ता था। फलतः समाज के इस वर्ग के लिए एक ऐसे धर्म की आवश्यकता महसूस हुई जो सरल हो एवं समाज में समानता का उपदेश दे।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात इस्लाम धर्म के एकेश्वरवादी एवं समानतावादी सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार से भी सर्वसाधारण का इस धर्म के प्रति रुझान बढ़ा। इन परिस्थितियों में भक्ति संतों द्वारा हिन्दू–धर्म में आत्म सुधार के प्रयास शुरू हुए इसी क्रम में भक्ति आन्दोलन का जन्म हुआ।

दक्षिण भारत से भक्ति परम्परा की शुरुआत

अलवार एवं नयनार संत

प्रारंभिक मध्यकाल में (सातवीं से बारहवीं सदी के बीच) भक्ति आन्दोलन को आमलोगों तक पहुँचाने का श्रेय तमिल क्षेत्र (दक्षिण भारत) के अलवार एवं नयनार संतों को जाता है। इन्होंने आत्मा को पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए ईश्वर के प्रति पूर्ण भक्ति एवं श्रद्धा पर बल दिया। नयनार एवं अलवार घुमक्कड़ संत थे जो गाँव–गाँव जाकर देवी–देवताओं की प्रशंसा में भजन कीर्तन करते थे। इन संतों का संबंध नीची जाति के लोगों से भी था। इन्होंने समाज के सभी लोगों को ईश्वर की भक्ति का संदेश दिया।

© BSTBPC WBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

क्या आप जानना चाहेंगे ?

नयनार शैव (शिव की उपासना करनेवाले) एवं अलवर वैष्णव (विष्णु की उपासना करने वाले)संतों को कहा जाता था। कुल मिलाकर नयनार संतों की संख्या 63 थी जो समाज के विभिन्न वर्गों जैसे कुम्हार, अस्पृश्य कामगार, किसान, शिकारी, सैनिक, ब्राह्मण और मुखिया जैसी जातियों में पैदा हुए थे। अप्पार, सेबंदर, सुन्दरार, मणिक्कव सागार आदि सर्वाधिक प्रसिद्ध नयनार संत थे। इनके गीतों के संकलन को तेवरम् और तिरूवाचकम् कहा जाता था। अलवार संतों की संख्या 12 थी। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्व परियअलवार,एवं उनकी पुत्री अंडाल आदि थी। इनके गीत दिव्य प्रबंधम् में संकलित हैं।

आमलोगों के साथ इन संतों का सीधा संबंध था। लोगों ने इनके सम्मान में मंदिरों का निर्माण किया तथा इनकी धार्मिक जीवनियाँ भी लिखी गईं। इन संतों के

द्वारा रचे गए गीतों में भगवान और भक्त के बीच भी सीधा संबंध स्थापित करने पर बल दिया गया जिससे समाज में समानता की प्रवृत्ति बढ़ी।

माणिक्कवसागार की कांस्य प्रतिमा

माणिक्कवसागार की रचना का एक अंशः–

मेरे हाड़मांस के इस घृणित पुतले में
तुम आए, जैसे यह कोई सोने का मंदिर हो,
मेरे कृपालु प्रभु, मेरे विशुद्धतम रत्न,
तुमने मुझे सांत्वना देकर बचा लिया।
तुमने मेरा दुख, मेरा जन्म–मृत्यु का कष्ट और माया–मोह
हर लिया और मुझे मुक्त कर दिया।
हे ब्रह्मानंद, हे प्रकाशमय, मैंने तुममें शरण ली है
और मैं तुमसे कभी दूर नहीं हो सकता।

© BSTBPC
WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

उपरोक्त कविता में कवि भगवान को क्या कहना चाहता है ?

शंकराचार्यः भक्ति के साथ दर्शन का मेल :

शंकराचार्य

भक्ति काल में ही महान् दार्शनिक शंकराचार्य का जन्म केरल में आठवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इन्होंने बताया कि हर जीव में परमात्मा का वास है। एक मात्र सत्य परमेश्वर (ब्रह्म) है बाकी सारा संसार झूठ हैं। शंकराचार्य ने संसार को झूठा (माया) मानकर और ब्रह्म को सत्य समझकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान–मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया। इन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को संपूर्ण भारत में

प्रतिष्ठित किया एवं चारों दिशाओं में मठ की स्थापना की एवं संपूर्ण भारत में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया।

शंकराचार्य ने ईश्वर के प्रति भक्ति के लिए अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनके दर्शन का मूल है–"सिर्फ ब्रह्म ही सत्य है बाकि सारा संसार झूठा है। इसका कोई अस्तित्व नहीं है। इन्होंने ईश्वर (ब्रह्म) को सर्व शक्तिमान बताया तथा जीव में ईश्वर के वास को बताया। बिना ईश्वर के जीव का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

रामानुज

शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों मठ

उत्तर	**–**	**बद्रीकाश्रम (उत्तराखंड)**
दक्षिण	**–**	**श्रृंगेरी (तमिलनाडु)**
पूरब	**–**	**पुरी (उड़ीसा)**
पश्चिम	**–**	**द्वारिका (गुजरात)**

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

रामानुज

शंकराचार्य के दर्शन में कुछ विशेषताओं को जोड़ते हुए रामानुज ने ईश्वर को (परमात्मा) दया एवं अनुकम्पा का स्रोत माना। इन्होंने समाज के दलित वर्ग को भी ईश्वरीय आराधना के द्वारा भक्ति का संदेश दिया। इन्होंने मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विष्णु के प्रति अनन्य भक्ति में देखा। रामानुज ने भक्ति की जो नई धारा प्रभावित किया उसने आगे चलकर उत्तर भारत में व्यापक रूप ग्रहण किया।

वासवन्ना का वीर शैववाद :

बारहवीं सदी के मध्य में वासवन्ना के नेतृत्व में दक्षिण भारत में वीरशैव आन्दोलन शुरू हुआ, जिसमें तमिल भक्ति आन्दोलन एवं मूर्तिपूजा (मंदिर) के विरुद्ध प्रतिक्रिया

दिखाई देती है। इन्होंने ब्रह्माणवादी विचारधारा के विरुद्ध निम्न जातियों एवं नारी के प्रति समतावादी विचार प्रस्तुत किया। इन्होंने कर्मकाण्डों एवं मूर्त्तिपूजा का भी विरोध किया।

महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन :

रामानुज के विचारों का प्रभाव दक्षिण भारत से महाराष्ट्र तक फैला। महाराष्ट्र की वैष्णव भक्ति की धारा में 13वीं सदी के नामदेव से 17वीं सदी के तुकाराम तक भक्तों की एक समृद्ध परम्परा देखने को मिलती है। इन्होंने ईश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम के सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाया। इन संतों ने धार्मिक आडम्बर, मूर्तिपूजा, तीर्थ, उपासना एवं कर्मकाण्डों का खण्डन (विरोध) किया। इन्होंने ऊँच–नीच के भेद–भाव का भी विरोध किया तथा अपने अनुयायियों में सभी जाति के लोगों, महिलाओं एवं मुसलमानों को शामिल किया।

महाराष्ट्र के सन्तों ने भक्ति की यह परम्परा पंढरपुर में विट्ठल स्वामी (विष्णु का एक रूप जो श्री कृष्ण के रूप में पूजा जाता था) को जन–जन के ईश्वर एवं आराध्य के रूप में स्थापित किया। इनकी रचनाओं को अभंग कहते हैं। इन भक्ति संतों की रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया। इन्होंने सभी वर्णों, जातियों यहाँ तक कि अंत्यजो को भी समान नजरिया से देखा।

महाराष्ट्र के भक्ति संतों के नाम – गणेश्वर, नामदेव एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, सखूबाई, चोखमेला का परिवार।

महाराष्ट्र के भक्ति सन्तों ने अपने अभंग द्वारा सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा किया।

संत तुकाराम का अभंग (मराठी भक्ति गीत)

जो दीन–दुखियों, पीड़ितों को

अपना समझता है

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

वही संत है
क्योंकि ईश्वर उसके साथ है।
वह हर एक परित्यक्त व्यक्ति को
अपने दिल से लगाए रखता है
वह एक दास के साथ भी
अपने पुत्र जैसा व्यवहार करता है।

तुकाराम का कहना है
मैं यह कहते–कहते
कभी नहीं थकूँगा
ऐसा व्यक्ति
स्वयं ईश्वर है

चोखमेला के पुत्र द्वारा रचित अभंगः–

तुमने हमें नीची जाति का बनाया
मेरे महाप्रभु, तुम स्वयं यह स्थिति स्वीकार करके तो देखो
हमें जीवनभर जूठन खानी पड़ती है
इसके लिए मेरे प्रभु तुम्हें शर्म आनी चाहिए।

तुम तो हमारे घर में खा चुके हो
तुम इससे कैसे इंकार कर सकते हो ?
चोखा का बेटा (करमामेला) पूछता है

महाराष्ट्र के भक्ति संतों ने सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करते हुए किस तरह के विचार प्रस्तु किए?

उत्तर भारत में सामाजिक–धार्मिक परिवर्तन की बयार :

तेरहवीं सदी के बाद उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन की एक नई चेतना विकसित हुई। इस चेतना (सुधारवादी भक्ति आंदोलन) पर ब्राह्मणवादी हिन्दू–धर्म, इस्लाम, सूफी संतों एवं तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों नाथपंथियों, सिद्धों तथा योगियों आदि के विचारधाराओं की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है।

रामानुज की भक्ति परम्परा को उत्तर भारत में लोकप्रिय बनाने का श्रेय रामानंद को जाता है। हिन्दी काव्य में एक उक्ति मिलती है कि

''भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।
प्रकट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।।''

अर्थात जो भक्ति दक्षिण भारत में आरंभ हुई, उसे रामानंद ने उत्तर भारत में लाया तथा कबीर ने इसे प्रसारित किया। इन्होंने जातिवाद एवं भेद–भाव को अनुचित बताया तथा सभी जाति के लोगों को साथ–साथ खाने–पीने को भी स्वीकार किया। इनके शिष्यों में निम्न जाति के हिन्दू एवं मुसलमान भी थे। उन्होंने जात–पात के विरुद्ध काफी मुखर होते हुए कहा :

जात–पात पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै से हरि का होई।।

सगुण सम्प्रदाय–राम को विष्णु के मानवीय अवतार के रूप में स्वीकार किया।

निर्गुण सम्प्रदाय– ईश्वर की कल्पना निराकर ब्रहम के रूप में की। इसने विभिन्न धर्मों के बीच मतभेद भुलाकर समाज में मानवीय धर्म की स्थापना का

प्रयास किया।

रामानंद रामभक्त सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनके शिष्य दो वर्गों में विभक्त हो गए–सगुण एवं निर्गुण संप्रदाय। सगुण संप्रदाय के प्रमुख संत तुलसीदास थे जिन्होंने रामचरित मानस की रचना करके रामभक्ति की परम्परा को हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ऊँचाई पर पहुँचाया। इन्होंने एक आदर्श समाज की कल्पना की, जिसमें सभी जातियाँ अनुशासन एवं शांति से अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

मीराबाई

वैष्णव धर्म की परम्परा में एक प्रमुख शाखा कृष्ण भक्ति की थी जिसमें वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी आराधना पर बल दिया गया। इस परम्परा के प्रमुख संतों में मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य, सूरदास एवं रसखान आदि का नाम शामिल है।

मीराबाई का संबंध मेवाड़ एवं मारवाड़ के राजघरानों से था। ये बचपन से ही कृष्ण के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम की भावना से प्रेरित थी। इन्होंने सुखमय जीवन त्यागकर परिवार के विरोध के बावजूद साधु संतों की संगति अपनाई एवं दलित वर्ग के रैदास की शिष्या बनीं।

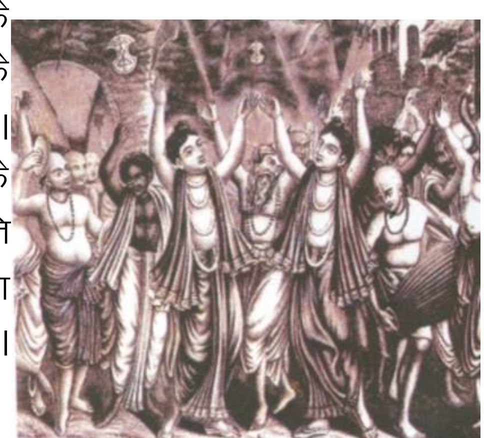

चैतन्य महाप्रभु

मीरा की भक्ति रचना का एक अंश:–

मेरो तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकूट, मेरो पति सोई।।
साधु ढिग बैठ–बैठ, लोक–लाज खोई।

भगत देखी राजी भई, जगत देखी रोई।।

बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने शैशवावस्था में ही सन्यास ग्रहण कर वैष्णव धर्म का सरल और नैतिक रूप प्रस्तुत किया। इन्होंने भजन–कीर्तन, आत्मा की शुद्धता और ईश्वर के प्रति प्रेम को महत्व दिया। इनके अनुयायियों में हिन्दू मुसलमान, चाण्डाल ब्राह्मण सभी को शामिल किया गया।

भक्ति आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र

कृष्ण भक्ति परम्परा में सूरदास और रसखान ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से जन–जन तक अपनी पहुँच बनाई। जबकि ये धर्म प्रचारक नहीं थे किन्तु इनकी रचनाएँ सांस्कृतिक महत्व से पूर्ण हैं। सूर ने अपनी रचनाओं में कृष्ण के बाल रूप को महिमा प्रदान की है।

रामानंद के अनुयायियों का दूसरा वर्ग उदारवादी अथवा निर्गुण सम्प्रदाय कहलाता था। इन संतों ने ईश्वर की कल्पना निराकार रूप में की। इन्होंने जाति–पाति, ऊँच–नीच, कर्मकाण्ड एवं मूर्ति पूजा आदि का मुखर विरोध किया। इन संतों में प्रमुख थे–कबीर। कबीर इस्लाम और हिन्दू धर्म के उपदेशों से भली भाँति परिचित थे। कबीर के विचारों की जानकारी साखी एवं सबद में मिलते हैं।

कबीर के विचारों के संग्रह बीजक में हैं जिसके दो भाग–साखी एवं सबद है।

इनके कुछ भजन गुरुग्रंथ साहब एवं पंचवाणी में संकलित हैं। गुरुग्रंथ साहब का संकलन गुरु अर्जुनदेव ने किया।

कबीर दास

कबीर के उपदेशों में ब्राह्मणवादी हिन्दूधर्म और इस्लाम दोनों के आडम्बरपूर्ण पूजा के सभी रूपों पर कुठाराघात किया गया है। इनके द्वारा रचित पदों की भाषा बोलचाल की हिन्दी थी। कभी–कभी इन्होंने रहस्यमयी भाषा का भी प्रयोग किया जिसे समझना आसान नहीं था।

कबीर के कुछ क्रांतिकारी दोहे :–

1. पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
   ताते ये चक्की भली, पीसि खाए संसार।।
2. पोथि पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
   ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।
3. गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
   बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविन्द दिये बताय।
4. कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाए।
   ता चढि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा भया खुदाय।।

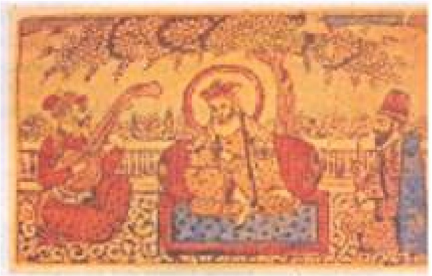

गुरुनानक

कबीर रामानन्द के शिष्य थे तथा राम नाम के जप में विश्वास करते थे। परन्तु इनके राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र नहीं थे। इन्होंने

अपने राम को इस रूप में बताया–

दसरथ के गृह ब्रह्म न जनमें।
ई छल माया कीन्हा।

ये दशरथ पुत्र राम को विष्णु का अवतार भी नहीं मानते थेः–

''चारि भुजा के भजन में भूल पड़ा संसार।
कबिरा, सुमिरे ताहि को जाकि भुजा अपार।।

गुरुनानक

कबीर के समकालीन गुरु नानक ने भी अन्य भक्ति संतों की तरह ही सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों का विरोध किया। इन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म दोनों की शिक्षाओं को ग्रहण किया। इन्होंने सर्वशक्तिमान ईश्वर की आराधना का संदेश दिया। इन्होंने आपसी सहयोग एवं अन्तरजातीय विवाह पर भी बल दिया। इनके उपदेश आदि ग्रंथ में संकलित हैं। इनके अनुयायी सिख धर्मावलम्बी कहलाए।

बिहार के संत दरिया साहेब

जब भारतीय स्तर पर सांस्कृतिक मेल–जोल की परम्परा कमजोर हो रही थी, उसी समय क्षेत्रीय स्तरपर धार्मिक सामंजस्य की परम्परा प्रबल हुई जिसे बिहार में दरियापंथ के उदय के रूप में देखा जा सकता है। दरियापंथ के प्रवर्तक दरिया साहब को उनके अनुयायियों द्वारा कबीर का अवतार भी माना जाता है। ये कबीर की तरह ही एक समन्वयवादी चिन्तक थे।

दरिया साहेब के विचारों में एकेश्वरवादी भावना थी। इनके अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी है तथा वेद और कुरान दोनों में ही उसका प्रकाश है। ईश्वर को दरिया साहब ने निर्गुण और निराकार माना। इन्होंने अवतार–पूजा का खण्डन किया। इन्होंने केवल प्रेम, भक्ति और ज्ञान को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन माना। इनके अनुसार प्रेम के बिना भक्ति संभव नहीं है और भक्ति के बिना ज्ञान अधुरा है। इनका कहना है कि ईश्वर के प्रति प्रेम, पाप से बचाता है और ईश्वर की अनुभूति में सहायक होता है। इनके अनुसार ज्ञान पुस्तकों में नहीं बल्कि चेतना में निहित है जबकि विश्वास ईश्वर

की इच्छा के प्रति समर्पण मात्र है। दरिया साहब ने जाति प्रथा, छुआ–छूत आदि का विरोध किया। इनके विचारों पर इस्लाम का एवं व्यवहारिक पहलुओं पर निर्गुण भक्ति का प्रभाव दिखाई देता है। इनके अनुयायियों में दलित वर्ग की संख्या ज्यादा थी।

दरिया साहेब के विचार बिहार के पश्चिमी हिस्से, जो आज के आरा, बक्सर, रोहतास, भभुआ जिले हैं में काफी लोकप्रिय थे। इन्होंने शाहाबाद के इलाके में मठ की भी स्थापना की। इनका प्रभाव वाराणसी तक था।

दरिया साहेब के उपदेशों के कुछ अंश :–

''एक ब्रह्म सकल घट वासी; वेदा कितेबा दुनो परणासी''।

'ब्रह्म, विसुन, महेश्वर देवा, सभा मिली करहिन ज्योति के सेवा'।

तीन लोक से बाहरे सो सद्गुरु का देश'।

तीर्थ, बस्त, भक्ति, बिनु फीका तथा पड़ही पाखण्ड पथल का पूजा।

सूफीवाद :

मिली–जुली संस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव सूफीवाद के विकास में देखने को मिलता है। भक्ति संतों और सूफियों में काफी समानताएँ थीं। दोनों के बीच लगातार वैचारिक आदान–प्रदान होते रहे। सूफी रहस्यवादी संत थे, जिन्होंने बाहरी आडम्बर को अस्वीकार करके ईश्वर के प्रति प्रेम एवं भक्ति तथा मनुष्यों के प्रति दया भाव दिखाने पर बल दिया।

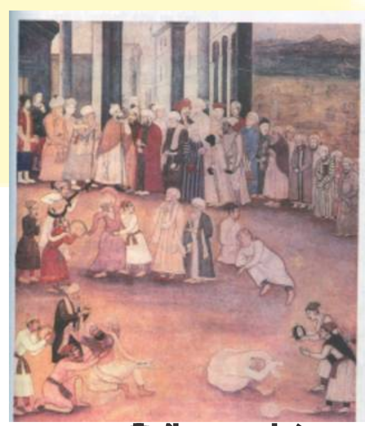

सूफियों द्वारा समां के आयोजन का चित्र

रहस्यवाद–रहस्यवाद वह भावना है जो मानव को ईश्वर–संबंधी रहस्यों को जानने के लिए प्रेरित करती है। सूफीवाद एक ऐसा प्रयास है जिसके तहत व्यक्ति (संत) अपने अन्दर अल्लाह की

उपस्थिति को महसूस करता है और बिना किसी भेद–भाव के ईश्वर की समस्त रचना से प्रेम करता है।

फुलवारी खानकाह

इन्होंने इस्लाम में मूर्तिपूजा को अस्वीकार करके एकेश्वरवाद यानि सिर्फ अल्लाह के प्रति समर्पण का दृढ़ता से प्रचार किया। इस्लाम ने शरियत (धार्मिक कानून) एवं नमाज को प्रधानता दी, जबकि सूफी ईश्वर के साथ किसी की परवाह किए बगैर उसी तरह जुड़े रहना चाहते थे जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिका से। अल्लाह की आराधना में मस्त सूफी संत गीतों की रचना करके गाया करते थे। ये पीर या औलिया (गुरु)की देखरेख में समा (गाना) ज़िक्र (नाम का जाप) एवं चिन्तन आदि किया करते थे।

वैसे तो सूफीवाद के विकास के कई किस्से हैं लेकिन इसकी शुरूआत मध्य एशिया से मानी जाती है। यहाँ के सूफी संतों में ग़ज़ाली, रूमी, सादी एवं राबिया आदि का नाम उल्लेखनीय है।

भारत में सबसे पहले सूफी खानकाह की स्थापना का श्रेय सुहरवर्दी सिलसिले के संत बहाउद्दीन जकरिया को है। सुहरवर्दी उपवास एवं आत्मदमन में विश्वास नहीं करते थे। इन्हें धन एवं राजनीति से कोई परहेज नहीं था। इन संतों ने राजकीय सहयोग से सुखमय जीवन व्यतीत किया एवं धर्मान्तरण को बढ़ावा दिया।

खानकाह – सूफी संतों द्वारा जहाँ इस्लाम एवं रहस्यवादी चिन्तन की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसमें सभी वर्ग के लोग शिक्षा ग्रहण करते

थे। गुरु को पीर एवं शिष्य को मुरीद कहा जाता था।

फुलवारी शरीफ खानकाह – फुलवारी शरीफ खनकाह मध्यकालीन शिक्षा जगत का एक महत्वपूर्ण स्थल है। यहाँ दूर–दूर से विद्यार्थी अरबी एवं फारसी की शिक्षा लेने आते थे। यहाँ पीरी–मुरीदी परम्परा का अनोखे ढंग से निर्वाह किया जाता था। इस खानकाह की लाइब्रेरी मध्यकालीन साहित्यिक कृतियों एवं पाण्डुलिपियों के कारण काफी समृद्ध मानी जाती है। इस लाइब्रेरी की खासियत यह है कि यहाँ मुगल बादशाह औरंगजेब द्वारा लिखित कुरान की प्रति सुरक्षित है। इसी खनकाह में अरबी एवं फारसी भाषाओं की जानकारी प्राप्त करने राजाराम मोहन राय आए थे।

इस खानकाह की लाइब्रेरी लगभग 400 वर्ष पुरानी है। इसमें लगभग 4 हजार पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। इस लाइब्रेरी में चीनी मिट्टी पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। यहाँ लगभग 20 हजार इस्लामी एवं फारसी साहित्य पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। यह खानकाह आज भी इस्लामी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र है। आज भी यहाँ देश–विदेश के शोधार्थी आते रहते हैं।

e[kne ;fg;k eujh dh njxkg

भारत का सबसे लोकप्रिय सिलसिला चिश्ती था जिसकी स्थापना अजमेरशरीफ में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के द्वारा की गई थी। मुईनुद्दीन के शिष्यों में राजस्थान के हमीदुद्दीन नागौरी, दिल्ली के बख्तियार काकी, ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया, पंजाब के बाबा फरीद एवं गुलबर्ग के बन्दानवाज गेसुदराज का काफी सम्मान था। चिश्ती सिलसिले

को लोकप्रिय बनाने का श्रेय निजामुद्दीन औलिया को जाता है।

चिश्ती संत, सुहरवर्दी संतों के विपरीत सादगी, निर्धनता एवं एकान्तवास में विश्वास करते थे। इन्हें राजकीय सहयोग एवं सुख–सुविधा की कोई आवश्यकता नहीं थी। इन्होंने धर्मान्तरण में कोई रूची नहीं ली। इनके दरवाजे सभी धर्म के लोगों के लिए खुले रहते थे। चिश्ती संत कठोर तप में विश्वास करते थे।

आगे चलकर भारत में कई सिलसिलों की स्थापना हुई, जिसमें कादरी, नक्शबंदी, शुत्तारी एवं बिहार में फिरदौसी का विशेष महत्व है। बिहार में फिरदौसी सिलसिले के संतों में हजरत मखदूम शराफुद्दीन यहिया मनेरी का विशेष महत्व है।

हजरत मखदूम शरफुद्दीन यहिया मनेरी

भारत में मिली–जुली संस्कृति की जो पवित्र धारा सूफी संतों ने बहायी उसका आज भी विशेष महत्व है। इस संस्कृति को बिहार में मजबूत करने का कार्य मनेरी साहब ने किया। इन्होंने संकीर्ण विचारधारा का न केवल विरोध बल्कि जाति–पाति एवं धार्मिक कट्टरता की जगह समन्वयवादी संस्कृति के निर्माण का सक्रिय प्रयास किया। इनके प्रयास से फिरदौसी सिलसिले को बिहार में काफी लोकप्रियता मिली। मनेरी साहब ने मनेर से सुनार गाँव (बाँग्लादेश) तक यात्रा की एवं ज्ञानार्जन किया। इसके बाद ये राजगीर एवं बिहारशरीफ में तपस्या एवं धर्म प्रचार में लीन रहे। फारसी भाषा में उनके पत्रों के दो संकलन मकतुबाते सदी एवं मकतुबात दो सदी प्रमुख हैं।

इनकी कुछ हिन्दी रचनाओं के अंश इस प्रकार है :–

शर्फागोर डरावन, किस अधियारी रात बरना पूछे कोई, कौन तुम्हारी जात। हिरदा में देखलु बहार सांवर गोरियो, बेरी–बेरी कर है सिंगार

पुकार सावर गोरियो ।खूब हेयात आज होरी रचेगी ।।

क्या आप जानते हैं?

बिहारशरीफ में मनेरी साहब का मजार(दरगाह) है। इनके बगल में उनकी माँ रजिया का मजार है। बीबी रजिया सूफी संत पीर जगजोत की बेटी थी।

अभ्यास

1. आइए, याद करें :–

1. सिंध विजय किसने की ?

   (क) मुहम्मद–बिन–तुगलक (ख) मुहम्मद बिन कासिम

   (ग) जलालुद्दीन अकबर (घ) फिरोजशाह तुगलक

2. महमूद गजनी के साथ कौन–सा विद्वान भारत आया?

   (क) अल–बहार (ख) अल जवाहिरी

   (ग) अल–बेरूनी (घ) मिनहज उस सिराज

3. भारत में कुर्ता–पायजामा का प्रचलन किनके आगमन से शुरू हुआ?

   (क) इसाई (ख) मुसलमान

   (ग) पारसी (घ) यहूदी

4. अलवार और नयनार कहाँ के भक्ति संत थे?

(क) उत्तर भारत (ख) पूर्वी भारत

(ग) महाराष्ट्र (घ) दक्षिण भारत

5. मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह कहाँ है?

(क) दिल्ली (ख) ढाका

(ग) अजमेर (घ) आगरा

2. इन्हें सुमेलित करें :–

(क) निजामुद्दीन औलिया	(1) बिहार
(ख) शंकर देव	(2) दिल्ली
(ग) नानकदेव	(3) असम
(घ) एकनाथ	(4) राजस्थान
(ङ) मीराबाई	(5) महाराष्ट्र
(च) संत दरिया साहब	(6) पंजाब

3. आइए समझकर विचार करें :– 200 शब्दों में उत्तर दें।

(1) भारत में मिली–जुली संस्कृति का विकास कैसे हुआ?प्रकाश डालें।

(2) निर्गुण भक्ति संतों की भारत में एक समृद्ध परम्परा रही है। कैसे?

(3) बिहार के संत दरिया साहेब के बारे में आप क्या जानते हैं?लिखें।

(4) मनेरी साहब बिहार के महान सूफी संत थे। कैसे?

(5) महाराष्ट्र के भक्ति संतों की क्या विशेषता थी।

4. [illegible] :–

8

क्षेत्रीय संस्कृतियों का उत्कर्ष

एक मशहूर कहावत है 'कोस–कोस पर पानी बदले और सात कोस पर वाणी'। यह कहावत सुनते ही कक्षा के सभी बच्चे एक दूसरे की तरफ देखने लगे। तभी मोहन ने पूछा:–"मास्टरजी आपने ऐसा क्यों कहा और इसका मतलब क्या है" ? मास्टरजी बोले " इसका मतलब है कि हर दो तीन किलोमीटर पर पानी का स्वाद और स्तर बदल जाता है और हर बीस–इक्कीस किलोमीटर पर भाषा में परिवर्तन हो जाता है"। इस अध्याय में हम क्षेत्रीय भाषा एवं साहित्यों के बारे में पढ़ेंगे।

© RSTBRC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

गुप्तों के विशाल साम्राज्य के विघटन के परिणाम स्वरूप लगभग छठी शताब्दी से क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों के अभ्युदय का सिलसिला शुरू हुआ। सातवीं एवं आठवीं शताब्दी तक जिन नए राज्यों का अस्तित्व उभर कर सामने आया, उनमें पाल, गुर्जर, प्रतिहार, राष्ट्रकुट, पल्लव तथा चोल आदि प्रमुख थे। इन राज्यों के विषय में आप दूसरे पाठ में पढ़ चुके हैं। नये राज्यों के कारण भाषा–साहित्य, चित्रकला एवं संगीत जैसे क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। परिणामस्वरूप उत्तर भारत में जहाँ बंगला, असमिया, मैथिली, उड़िया व अवधी जैसे क्षेत्रीय भाषाओं में विकास के संकेत मिलते हैं, वहीं दक्षिण के राज्यों में तमिल एवं मलयालम जैसे क्षेत्रीय भाषाओं के विकास को भी अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला। क्षेत्रीय संस्कृतियों के उत्कर्ष के इस महत्वपूर्ण दौर में आनेवाले शताब्दियों में अखिल भारतीय स्तर पर उर्दू तथा हिन्दी भाषा के विकास ने इनके साहित्य का बड़ा भंडार निर्मित किया, वहीं दूसरी तरफ इस काल में अपनी क्षेत्रीय पहचान को समृद्ध और संवर्द्धित करने के क्रम में चित्रकला एवं संगीत के क्षेत्रों में भी कालान्तर में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इन सबके मिले–जुले प्रभाव के कारण इन क्षेत्रों में सांस्कृतिक जीवन का आधार महत्वपूर्ण ढंग से विस्तृत एवं व्यापक बना।

SOL www.absol.in

भाषा एवं साहित्य–

क्षेत्रीय भाषाओं की उत्पत्ति लगभग आठवीं से दसवीं शताब्दी के बीच हुई। कई राज्यों में संस्कृत के साथ–साथ तमिल, कन्नड़ एवं मराठी का प्रयोग प्रशासन में किया जाने लगा। विजयनगर साम्राज्य में तेलगु साहित्य का विकास हुआ। बहमनी राज्य में मराठी प्रशासन की भाषा रही। बाद में इन भाषाओं के विकास में मुस्लिम शसकों ने भी योगदान दिया। उदाहरणस्वरूप बंगाल के शासक नुसरत शाह ने 'रामायण' एवं 'महाभारत' का बंगाली में अनुवाद कराया।

दिल्ली के शासकों ने भाषा और साहित्य के विकास को बढ़ावा दिया जिसके कारण, हिन्दी, उर्दू, बंगला जैसी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को पहचान मिली। आम आदमी विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग बोलियाँ बोलते थे जो सामूहिक रूप में अपभ्रंश कहलाती थीं। इसी अपभ्रंश से उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, बंगला आदि भाषाओं की उत्पत्ति हुई। उर्दू एक मिश्रित (जिसमें अरबी, फारसी, एवं तुर्की शामिल है) भाषा है। इसकी लिपि फारसी है लेकिन व्याकरण के नियम अन्य भाषाओं के जैसे ही हैं। फारसी के विकास के लिए लाहौर पहला केन्द्र बना।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति एवं विकास ग्यारहवीं शताब्दी से शुरू हुआ। इसके दो कारण थे–पहला, विभिन्न मातृभाषा वाले सैनिक आपसी बातचीत के लिए जिस भाषा का प्रयोग करने लगे वह उर्दू कहलायी। उर्दू का शाब्दिक अर्थ शिविर या खेमा है। दूसरा– सूफी संतों द्वारा धर्म प्रचार और उपदेश देने के क्रम में इसका विकास हुआ। सूफी संतों के योगदान ने इसे और सम्पन्न बनाया। चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरू ने इस भाषा को 'रेख्ता' एवं 'हिन्दवी' का नाम दिया और इसमें काव्य रचना की। खुसरू की रचना का एक उदाहरण है।

''गोरी सोये सेज पर
मुख पर डाले केश
चल खुसरू घर आपने
रैन भई चहूँ देश''

अमीर खुसरू की कुछ और उर्दू काव्य रचनाओं को एकत्रित करें।

दक्षिण भारत में जिस उर्दू का विकास हुआ वह दक्कनी कहलायी। आठारहवीं शताब्दी के अंत तक उर्दू 'हिन्दवी' हिन्दी' या दक्कनी कही जाती थी और लोग उर्दू भाषा को 'हिन्दुस्तानी' या 'दक्कनी' के नाम से पुकारते थे। मुगल काल में उर्दू मुगलों की मातृभाषा बन गयी और घर, दरबार तथा शिविरों में बोली जाने लगी।

BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

हिन्दी को विभिन्न क्षेत्रों में। किन–किन नामों से जाना जाता था

'हिन्दी', हिन्द' हिन्दवी' और हिन्दुस्तान जैसे शब्दों का सम्बन्ध भारत के उत्तर पश्चिम भाग में बहने वाली सिंधु नदी से है। भारत व ईरान के बीच प्राचीन काल से ही संबंध बना हुआ है। ईरानी सिंधु को हिंदु कहते थे। 'हिंदु' से 'हिंद' बन गया। ईरान के लोगों ने जब इस शब्द में 'इक' प्रत्यय लगाया तब वह शब्द 'हिंदीक' बन गया जिसका अर्थ होता है ' हिन्द का'। तभी से हिंद की भाषा 'हिन्दी' कही जाने लगी।

सल्तनत काल में हिंदी साहित्य के कई रूपों का उदय हुआ, जिनमें प्रमुख है–जैन,लौकिक एवं गद्ध साहित्य। जैनों ने साहित्य की रचनाएँ की लेकिन उनकी अधिकतर रचनाएँ इस काल में संस्कृत में ही रहीं। हेमचन्द्र सूरि ने जैन साहित्य की रचना के क्षेत्र में अपना योगदान दिया।

लौकिक साहित्य में 'ढोला–मारूहा' नामक प्रसिद्ध लोक–भाषा काव्य लिखा गया। इसमें ढोला नामक राजकुमार और मारवाणी नाम की राजकुमारी की प्रणय कथा का वर्णन है। इस कविता में स्त्री के कोमल भावों का बहुत ही मार्मिक वर्णन है। समकालीन लौकिक हिन्दी साहित्य के अमर कवि अमीर खुसरू हैं। अमीर खुसरू ने हिन्दी में बहुत सी पहेलियों की रचना की है, जो आज भी प्रचलित है। उनमें से एक पहेली नीचे दी गयी है :–

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED © BSEBPC

तरवर से एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।
अमीर खुसरू जो कहें, अपने नाम न बोली निबोरी।।

गद्य साहित्य और इतिहास लेखन कला का भी इस युग में विकास हुआ। जियाउद्दीन बरनी, अफीफ और एसामी इस युग के प्रसिद्ध इतिहासकार थे। इनके विषय में आप पाठ दो और तीन में पढ़ चुके हैं। जिया नक्शवी ने 'तुतीनामा' नामक पुस्तक की रचना की जिसमें तोता एक ऐसी विरहणी नायिका को कहानी सुनाता है जिसका पति यात्रा पर गया था। यह कहानी मूल रूप से संस्कृत में था, जिसका जिया नक्शवी ने फारसी में अनुवाद किया था।

सल्तनत काल में हिन्दी साहित्य के विकास की जो प्रक्रिया शुरू हुयी थी,

उसमें मुगल काल में तेजी आयी। इस काल में हिन्दी केवल दरबार और शाही महलों तक सीमित न रहकर, एक जन आन्दोलन के रूप में विकसित होने लगी। सभी मुगल बादशाहों ने हिन्दी को संरक्षण प्रदान किया। लेकिन अकबर के समय यह विकास के शिखर पर था। सोहलवीं सत्रहवीं शताब्दी में क्षेत्रीय भाषाओं में परिपक्वता आयी तथा उत्कृष्ट संगीतमय काव्य की रचना हुयी। बंगाली, उड़िया, हिन्दी, राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओं के काव्य में राधाकृष्ण एवं गोपियों की लीला तथा भागवत की कहानियों का काफी प्रयोग होता रहा। इसी समय अलाओल ने जौनपुर के मल्लिक मुहम्मद जायसी द्वारा हिन्दी में रचित 'पद्मावत' का बंगला में अनुवाद किया। इस काव्य में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ अभियान को आधार बनाकर एक प्रेम कहानी लिखि गई।

अकबर के नवरत्नों में से एक अर्ब्दुरहीम खान–ए–खाना थे, जो रहीम के उपनाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने हिन्दी में बहुत से दोहों की रचनाएँ कीं। इनके द्वारा लिखित दोहे आज भी हमारे समाज में प्रचलित हैं और लोग इसे बहुत ही चाव से गाते हैं। उनके द्वारा लिखित दोहों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

अब्दुर रहीम खान–ए–खाना

WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

रहिमन विपदा तू भली।
जो थोड़े दिन होय।।
हित अनहित या जगत में
जान पड़े सब कोई।।

बिगड़ी बात बने नही।
लाख करें कि होय।।
रहिमन बिगड़ी दूध के।
मथे न मक्खन होय।।

गोस्वामी तुलसीदास

अक्बर के समय में क्षेत्रीय भाषाओं में भी बहुत सी श्रेष्ठ रचनाएँ हुईं। उसके शासन काल में ही तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना अवधी भाषा में की, जिसके नायक राम थे। इसी समय मुगल सम्राट एवं हिन्दू राजा ने

आगरा एवं आस पास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली ब्रजभाषा को भी प्रोत्साहित किया। कवि सूरदास का इस भाषा लेखन में महत्वर्पूण योगदान था।

दक्षिण भारत में मलयालम भाषा की साहित्यिक परम्परा की शुरुआत मध्यकाल में ही हुई। महाराष्ट्र में एकनाथ एवं तुकाराम ने मराठी भाषा को काफी विकसित किया।

बिहार राज्य अनेक भाषाओं का क्षेत्र रहा है इसमें से कुछ भाषाएँ देशव्यापी स्तर पर बोली जाती हैं और कुछ का स्वरूप स्थानीय है। हमारे प्रदेश का न केवल राष्ट्रीय भाषा, बल्कि स्थानीय भाषा और बोलियों के विकास में भी महत्वर्पूण योगदान रहा है। मध्यकाल में बहुत से ईरानी यात्रियों ने इस क्षेत्र में रहने वाले विद्वानों एवं कवियों की चर्चा की है। बिहार के चण्देश्वर इस काल के प्रमुख टीकाकार थे, जिन्होंने सूफी संतों से प्रभावित होकर धर्म की व्याख्या की थी। देश के हिन्दी भाषी राज्यों में इस क्षेत्र का महत्वर्पूण स्थान है। यहाँ हिन्दी की उत्पत्ति 'मगधी' अपभ्रंश से हुई है। इसके अलावा क्षेत्रीय भाषा मैथिली, मगही एवं भोजपुरी का उद्‌भव हुआ, जिसका उर्दू के विकास में भी योगदान रहा।

बिहार की भाषाओं में मैथिली भाषा सबसे उन्नत एवं विकसित है। यह तिरहुत क्षेत्र के दरभंगा प्रमंडल में बोली जाती है। इस भाषा के प्रयोग के लिए एक अलग लिपि का विकास किया गया है, जिसे मैथिली लिपि कहते हैं। यद्यपि प्राचीन काल से ही मैथिली भाषा बोली जाती रही है परन्तु इसके वर्त्तमान स्वरूप का उदय दसवीं शताब्दी में हुआ।

विद्यापति मैथिली के एक प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने कविता के माध्यम से मैथिली साहित्य को बहुत ऊँचाई तक पहुँचाया। अपनी कविता के द्वारा मध्यकालीन मिथिला के समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया। इसके अलावे विद्यापति ने धार्मिक भावनाओं से जुड़ी रचनाएँ भी लिखीं, जो जनमानस को गहराई तक प्रभावित करती रहीं। विद्यापति की रचना, जिसमें उन्होंने गंगा नदी के प्रति श्रद्धा व्यक्त किया है–

> ''बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे।
> छोड़इत निकट नयन बहु नीरे।।''

इसी तरह प्रचीनकाल से चली आ रही मगधी भाषा ने मगही का रूप धारण किया और उसी के अपभ्रंश से उत्पन्न होने वाली बोलियों में भोजपुरी, बिहार के पश्चिमी और उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में बोली जाती हैं। भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति

© BSTBPC WEBCOPY: NOT TO BE PUBLISHED

लगभग आठवीं शताब्दी में हुयी थी। यद्यपि भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता है और इसका लिखित साहित्य कम उपलब्ध है, परन्तु इसकी मौखिक परम्परा लोकगीतों और लोक कथाओं के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कबीर इस काल के प्रख्यात कवि थे जिनके दोहे धर्म निरपेक्षता पर आधारित होते थे।

इस तरह उर्दू, हिन्दी, बंगला, मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि भाषाओं एवं उनके साहित्य के विकास में इस प्रदेश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसमें तुर्क एवं मुगल शासकों की अहम् भूमिका थी।

चित्रकला

मध्यकाल से पहले भारत में चित्रकला को राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। जैन, बौद्ध, राजपूत एवं अन्य हिन्दू राजाओं ने प्राचीन भारत में चित्रकला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सातवीं–आठवीं शताब्दी के चित्र समूचे भारत में लघु चित्रों से संबंध जोड़ते हैं।

तुर्की शासन काल में भी लघु चित्रकला शैली भारत में विभिन्न नामों से जीवित बनी रही। उनमें प्रमुख थे–जैन चित्रकारी व पश्चिमी भारतीय शैली। समकालीन फारसी एवं हिन्दी ग्रंथों में अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में भित्ती चित्रों, पाडुलिपी चित्रों और कपड़े पर बने चित्रों के प्रमाण भी मिले हैं। सल्तनत कालीन चित्रों में आम जीवन के दृश्यों, शिकार के दृश्यों तथा लोक कथानकों के चित्र शामिल हैं। इनमें सुनहरे रंगों का खुलकर प्रयोग किया गया है।

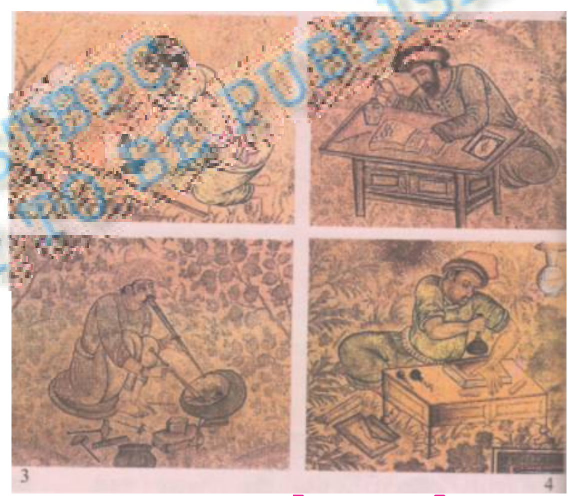

सल्तनत कालीन लघु चित्र

मुगलों के पहले शयन कक्षों में भित्ती चित्रों के रूप में चित्रकारी बहुत लोकप्रिय थी। लेकिन समय के थपेड़ों के कारण केवल नाम मात्र के चित्र ही शेष बचे हैं। दिल्ली सल्तनत कालीन चित्रकला के बिखरे और बचे खुचे अवशेष हमें चम्पानेर एवं सरहिन्द के मुगल पूर्व स्मारकों और सीरी एवं बेगमपुर के मध्य स्थित मखदुमावाली मस्जिद से मिले हैं। भित्ती चित्रों के ये अवशेष फूल–पत्तियों और वनस्पतियों के रूप हैं।

कुछ प्रांतीय शासकों ने भी चित्रकला को संरक्षण दिया। उनके समय में बनाए गए

© BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

चित्रों का उल्लेख विशेष रूप से जौनपुर और बंगाल में मिला है। प्रांतीय चित्रकला में लघुचित्रों की प्रधानता थी, जिसमें लाल और कुछ चित्रों में नीली, हरी और पीली पृष्ठभूमि होती थी।

भारत में मुगलों ने चित्रकला की जिस शैली की नींव डाली वह मुगल चित्रकला के नाम से जानी जाती है। इसमें जो पहली महत्वपूर्ण कृति है 'दास्ताने–अमीर हम्ज़ा' या हम्जानामा' है। यह एक दुर्लभ पांडुलिपि के रूप में उपलब्ध है। इसमें 1200 चित्र हैं। सारे चित्र स्थूल और चटकीले रंगों में कपड़े पर बने हुए हैं।

अकबर के शासनकाल में चित्रकला का जो विकास हुआ उसमें अकबर की व्यक्तिगत रुची का महत्वपूर्ण योगदान है। अकबर के समय चौड़े ब्रश की जगह गोल ब्रश और गहरे नीले और लाल रंग का अधिक प्रयोग किया जाने लगा। उसके राज दरबार में जसवंत और दसावन नामक प्रसिद्ध चित्रकार थे, जिन्होंने फारसी कहानियों को चित्रित करने का कार्य किया। 'महाभारत' एवं 'अकबरनामा' जैसे ग्रंथों की चित्रकारी इन्हें ही सौंपा गया था। इस काल में यूरोपीय चित्रकला का प्रभाव मुगल चित्रकला पर दिखने लगा। यूरोपियों चित्रकला के कुछ नमूने पूर्तगालियों के द्वारा अकबर के दरबार में पहुँचे। इनमें से मुगलों ने दो विशेषताओं को ग्रहण किया, पहला–व्यक्ति विशेष के चित्र को बनाना, दूसरा–दृश्य में आगे दिखने वाली वस्तुओं को छोटे आकार प्रदान करना। मुगल काल में शिकार के दृश्य, पशु–पक्षी तथा फूलों के चित्र विशेष रूप से बनाए जाते थे। राजस्थानी चित्रकला शैली एवं पश्चिम भारत की चित्रकारी भी मुगलों की शैली से प्रभावित हुई।

औरंगजेब के समय से चित्रकला का पतन आंरभ हो गया। जब मुगल दरबार में इनको आश्रय नहीं मिला तो छोटे–छोटे स्थानीय राजाओं और सामंतों ने इन्हें संरक्षण दिया और इन क्षेत्रों में अलग तरह की चित्रकला शैली का विकास हुआ। इस अध्याय में पहाड़ी चित्रकला एवं पटना कलम के बारे में हम विशेष रूप से पढ़ेंगे।

पहाड़ी चित्रकारी

© BSEB, NOT TO BE REPUBLISHED

उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के विभिन्न पहाड़ी राज्यों में की जाने वाली चित्रकारी पहाड़ी चित्रकारी कहलाती है। इस क्षेत्र में वर्त्तमान हिमाचल प्रदेश, जम्मु और उत्तर प्रदेश का टेहरी गढ़वाल का क्षेत्र आता है।

पहाड़ी चित्रकारी

पहाड़ी चित्रकारी में पारम्परिक विषयों पौराणिक गाथाओं के अतिरिक्त बालिकाओं को गेंद खेलते हुए या संगीत–साज बजाते या पक्षियों या पशुओं से अपना मनोरंजन करते हुए चित्रों को बनाया गया है। इसके अलावा राजा–महाराजाओं के एकल या दरबारियों के साथ भी चित्रों को बनाया गया है। प्राकृतिक दृश्यों में फैली हुई शाखाओं वाले पत्तीदार घने और बड़े पेड़ों का चित्रण किया गया है, जो चित्र में फलों से लदे हुए हैं। यही नहीं तारों भरे आकाश, आंधी–तूफान और आकाश के अंधेरे में चमकती हुई बिजली के दृश्य भी बनाए गए हैं।

मुगलकालीन चित्र व पहाड़ी चित्रों में क्या अंतर है ?

पहाड़ी चित्रकला में भड़कीले लाल, नीले और नारंगी रंग से लेकर हल्के पेंसिल रंगों का उपयोग किया जाता है। वस्त्रों, बर्तनों, सिंहासनों, कुर्सियों और कालीनों आदि के लिए सोने और चाँदी के रंगों का प्रयोग किया गया। पहाड़ी चित्रकला में रंग की कई परतें चढ़ायी जाती थीं। रंग की एक परत चढ़ाने के बाद उसे सूखने दिया जाता था और सूखने के बाद फिर से चमका कर दूसरी रंग की परत चढ़ायी जाती थी। अंत में रेखाचित्र को काले या लाल आदि रंगों से गहरा किया जाता था।

© BSTBPC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

पटना कलम

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण जब शाही दरबार में इन कलाकारों को प्रश्रय नहीं मिला तो ये अन्य क्षेत्रों में रहने लगे। 1760 के लगभग ये चित्रकार संरक्षण की खोज में बंगाल में मुर्शीदाबाद पहुँचे। उसके बाद कुछ चित्रकार पटना में भी आकर बसे। इन्होंने लोदीकटरा, मच्छरहट्टा, आरा तथा दानापुर में बसकर चित्रकला के क्षेत्रीय रुप को विकसित किया। यह चित्रकला शैली ही 'पटना कलम' या 'पटना शैली' कहलायी। पटना कलम के अधिकांश चित्रकार

पुरुष हैं, अतः इस शैली को पुरुषों की चित्रकला शैली भी कही जाती है। पटना कलम के चित्र लघु चित्रों की श्रेणी में आते हैं, जिन्हें अधिकतर कागज और कहीं–कहीं हाथी दांत पर भी बनाया गया है। इस शैली में व्यक्ति विशेष पर्व–त्योहार, एवं उत्सव तथा जीव–जन्तुओं को महत्व दिया गया। इस शैली में ब्रश से ही तस्वीर बनाने और रंगने का काम किया जाता था। इसमें गहरे भूरे, गहरे लाल, हल्के पीले और गहरे नीले रंगों का प्रयोग किया गया है।

संगीत

सल्तनत काल भारतीय संगीत के इतिहास में नये प्रयोगों का युग था। इस काल में रबाब, सारंगी एवं नवीन वाद्यों, गायन पद्धतियों तथा रागों आदि का आविष्कार हुआ। मध्यकालीन संगीत–परंपरा के संस्थापक प्रसिद्ध कवि, इतिहासकार एवं दार्शनिक अमीर खुसरू थे। सूफियों ने भी संगीत का खूब प्रचार प्रसार किया। ये गज़ल के रूप में खुदा की इबादत करते थे जो प्रेम काव्य के रूप में होती थी। ये 'सूफी संत' खानकाहों में गज़लों को गाते थे और भक्तिमय हो जाते थे।

दरगाह में कव्वाली गाते लोग

© BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED WEBCOPY

सल्तनत काल में दो प्रकार की गायन शैली प्रचलित थी– गज़ल और कव्वाली। गज़ल को अरबी भाषा में स्त्रीलिंग मानते थे और इसका अर्थ होता है– 'प्रेमपात्र से वार्तालाप'। एक गज़ल में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक ग्यारह शेर होते थे। गज़ल का संग्रह' दीवान' कहलाता है। उस समय की अधिकांश गज़लें श्रृंगार रस में लिखी होती थीं। यही कारण था कि गज़लों का गायन संगीत प्रेमियों को तो अच्छा लगता ही था, साथ–साथ सूफियों को भी प्रिय रहा। गज़ल के साथ–साथ गायन की दूसरी लोकप्रिय शैली–कव्वाली थी। 'कौल' का अर्थ हुआ 'कथन और कौल को गानेवाला 'कव्वाल' कहलाता था और यही गायन शैली कव्वाली कही जाने लगी। गज़ल के विषय को पहले लौकिक प्रेम की दृष्टि से देखा जाए और फिर यदि उसी विषय के प्रेमपात्र को ईश्वरीय मानकर भक्तिमय होकर गाया जाए तो वही कव्वाली का रुप ले लेती है। कुछ क्षेत्रीय राज्यों के शासक जैसे जौनपुर का सुल्तान हुसैन शरकी

एवं ग्वालियर का शासक मानसिंह संगीत को संरक्षण देते थे। सिंकदर लोदी ने भी संगीत को संरक्षण देने की परंपरा का बड़े पैमाने पर पालन किया।

मुग़ल बादशाहों ने संगीत को बढ़ावा दिया। अकबर के दरबार में गायकों को सात भागों मे बाँटा गया था जिनमें सप्ताह का एक दिन गायकों के एक भाग के लिए होता था। तानसेन अकबर के नवरत्नों में से एक थे। तानसेन के रचे हुए बहुत से ध्रुपद प्राप्त होते हैं जिनमें बादशाह अकबर के गुणगान हैं। उस समय यह प्रथा थी कि जिसके राजाश्रय में जो गायक रहता था, वह अपनी रचनाओं में उस आश्रयदाता का गुणगान किया करता था।

ऐसी कथा प्रचलित है कि जब तानसेन दीपक राग गाते थे तो दीपक अपने आप जल उठता था और जब राग मेघ–मलहार गाते थे तो वर्षा होने लगती थी। क्या अब यह संभव है कि दीपक राग गाने पर दीपक स्वय जल उठे और मेघ–मलहार गाने पर वर्षा होने लगे ?

मुग़ल काल में ख्याल गायन का भी आविष्कार हो चुका था। ख्याल दो प्रकार के होते थे:– बड़ा ख्याल और छोटा ख्याल। बड़ा ख्याल की लय धीमी रहती है और छोटे ख्याल की लय मध्यम व तीव्र एवं चंचलतापूर्वक रहती है। इसलिए बड़े ख्याल के मुकाबले छोटा ख्याल अधिक लोकप्रिय हुआ। बाद के मुग़ल बादशाहों ने संगीत को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया।

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED

बिहार में संगीत

यद्यपि बिहार में संगीत का प्रारंभ वैदिक युग में हुआ, परन्तु तुर्की शासन में बिहार में सूफी संतों के माध्यम से संगीत की प्रगति हुई। मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद शास्त्रीय संगीत का प्रसार मुग़ल दरबार से लखनऊ बनारस और पटना तक हुआ। बिहार के पटना, गया, आरा, छपरा, इत्यादि शहर संगीत के प्रमुख केन्द्र थे। पटना में ख्याल और ठुमरी को विशेष लोकप्रियता मिली। इसके अतिरिक्त गजल दादरा, कजरी और चैती गायन लोकप्रिय शैलियाँ थीं। बिहार में चिन्तामणि नामक एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए, जिन्हें 'बिहारी बुलबुल' की उपाधि दी गई थी।

1. आईए याद करें:—

(i) उर्दू की उत्पत्ति किस शताब्दी में हुई?

(क) आठवीं (ख) दसवीं (ग) ग्यारहवीं (घ) बारहवीं

(ii) उर्दू का शब्दिक अर्थ क्या है?

(क) शिविर (ख) घर (ग) महल (घ) दरबार

(iii) ईरानी सिंधू को क्या कहते थे?

(क) हिन्दू (ख) हिन्दी (ग) हिन्द (घ) हिंदीक

(iv) अकबर के नवरत्न में इनमें से कौन थे?

(क) तानसेन (ख) तुलसीदास (ग) कबीर (घ) बैरम खाँ

(v) तुलसी दास ने किस ग्रंथ की रचना की?

(क) राम चरित मानस (ख) मेघदूतम्

(ग) अभिज्ञान शकुन्तलम् (घ) आनन्द मठ

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें :—

(a) उर्दू का विकास कैसे हुआ?

(b) लौकीक साहित्य के बारे में पाँच पंक्तियों में बताएँ।

(c) 'रहिम' कौन थे? उनके द्वारा रचित किसी एक दोहा को लिखें।

(d) 'हम्जानामा' क्या है?

(e) पहाड़ी चित्रकला में किन—किन विषयों पर चित्र बनायी जाती थी?

(f) गज़ल और कव्वाली में अंतर बताएँ।

3. चर्चा करें :—

(1) क्षेत्रीय भाषा एवं साहित्य के विकास का क्या महत्व है?

(2) आपके घर में जो भाषा बोली जाती है उसका प्रयोग लिखने में कब से शुरु हुआ?

WEBCOPY, BTBPC NOT TO BE PUBLISHED

9

18 वीं शताब्दी में नई राजनैतिक संरचनाएँ

प्रिया और राहुल कि निगाह अचानक अपने विद्यालय के प्रधानाध्यपक कक्ष में लगे 18वीं शताब्दी के भारतीय उपमहाद्वीप के मानचित्र पर गई। इसमें उन्हें भारत कई अलग–अलग स्वतंत्र राज्यों में विभक्त दिखा जिसका पता उन राज्यों के भिन्न–भिन्न नाम और क्षेत्र से हो रहा था। इस मानचित्र में मुग़लों का भी एक क्षेत्र दिख रहा था जिसके विषय में पिछले अध्याय में उन्होंने काफी कुछ पढ़ा था। मानचित्र में राजनीतिक स्थिति को देखकर उनके मन में इन नवीन राज्यों के उदय की परिस्थितियों के विषय में सहज ही कई सवाल खड़े हुए, जिसे उसने वर्ग में शिक्षक के समक्ष रखा

मानचित्र–1 अठारहवीं शताब्दी का भारतीय उपमहाद्वीप

© BSEBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

यदि आप मानचित्र–1 को ध्यान पूर्वक देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ इस कारण मुग़लों के साम्राज्य की सीमा काफी छोटी हो गई। 1707 में औरंगजेब के मृत्यु के बाद मुगलों के अनेक प्रदेश स्वतंत्र हो गए। मुगलों का विरोध करने वाली शक्तियों ने भी स्वतंत्र राज्य बना लिया। इस अध्याय में हम इसी शताब्दी के दौरान उदित हुई नई राजनीतिक शक्तियों के बारे में पढ़ेंगे।

Lok; r jkT;%&
ऐसे राज्य जो अपने सारे निर्णय और नीतियों का निर्धारण स्वयं करता है।

अध्याय चार में आपने मुग़ल साम्राज्य के विषय में विस्तार से पढ़ा होगा। इस अध्याय में आप उन कारणों से परिचित हुए जिसने मुग़ल साम्राज्य को कमजोर किया। मुग़लों की इस कमजोरी का लाभ उनके अधीन कार्यरत प्रभावशाली शासकों ने उठाया। जैसे–जैसे मुग़ल साम्राज्य

कमजोर होता गया क्षेत्रीय शक्तियाँ अपने को स्वतंत्र और स्वायत राज्य में परिवर्तित करने लगी। अतः अठारहवीं शताब्दी में नई राजनैतिक संरचना के उदय की परिस्थितियाँ प्रत्यक्षतः मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारकों से जुड़ी थीं, जिसके विषय में आप पहले के अध्याय में पढ़े हैं।

उपमहाद्वीप में स्वतंत्र नए राज्यों का उदय– मुग़ल साम्राज्य के अवशेष पर उदित होने वाले राज्यों को स्वरूप के आधार पर तीन भागों या समूहों में बाँटा जा सकता है।

1. **मुग़ल प्रान्तों से स्वतंत्र होने वाले राज्य, बंगाल, अवध और हैदराबाद**
2. **बड़े मनसबदार और जागीरदारों का जो पहले भी मुग़लों के अधीन होकर काफी हद तक स्वायत थे का राज्य–राजपुताना क्षेत्र का राज्य**
3. **मुगलों से लंबे सैन्य संघर्ष के बाद उदित राज्य–मराठा, सिक्ख, जाट, एवं बुंदेल,**

अठारहवीं शताब्दी में जिन नए राज्यों का उदय हुआ, उनमें सबसे प्रमुख राज्य था बंगाल, अवध और हैदराबाद (निजाम) इन राज्यों के संस्थापक व्यक्तियों का मुग़ल दरबार में काफी प्रभावशाली और ऊँचा स्थान था। इसी का लाभ उठाकर उन्होंने स्वायत राज्यों की स्थापना की।

नए राज्यों को तीन समूहों में विभाजित करने का आधार क्या रहा होगा।

मुग़लों की केन्द्रीय सत्ता की कमजोरी का लाभ उठाकर दो व्यक्तियों मुर्शिद कुली खाँ और अली वर्दी खाँ ने बंगाल को धीरे–धीरे एक स्वतंत्र राज्य में परिवर्तित कर दिया। मुर्शिद कुली खाँ को 1700 ई0 में जब बंगाल का प्रांतपति बनाया गया तभी उसने प्रान्त की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में केन्द्रित करना आरंभ कर दिया। बंगाल में अपनी सत्ता मजबूत करने के लिए सबसे पहले उसने आय के स्रोत, भूराजस्व प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया। प्रशासन के खर्च को कम किया। जागीर भूमि (जमींदारों की जमीन) को राज्य की भूमि बना दिया। भूराजस्व वसूल करने में इजारेदारी या ठेकेदारी व्यवस्था को लागू किया। गरीब खेतिहरों का कष्ट दूर करने तथा उन्हें समय पर भू–राजस्व देने में समर्थ बनाने के लिए 'तकावी ऋृण' भी दिए। राजस्व वसूली की ठेकेदारी व्यवस्था ने किसानों के

तकावी ऋणः– किसानों को राज्य द्वारा दिया जाने वाला ऋण इसका उद्देश्य पैदावार को बढ़ाना था।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

उपर आर्थिक बोझ बढ़ा दिया। इस राज्य में प्रशासन का स्वरूप मुग़लों के समान ही रहा तथा धार्मिक मामलों में भी उन्हीं की नीतियों को अपनाया। हिन्दुओं और मुस्लमानों को रोजगार और प्रशासन में समान अवसर दिया। इस प्रकार आंरभिक शासकों ने बंगाल को स्थिरता प्रदान की।

ठेकेदारी या इजारेदारी—राजस्व वसूली के लिए एक निश्चित क्षेत्र पर निर्धारित रकम के लिए कुछ लोगों से शासक द्वारा किया गया समझौता।

हैदराबाद— मुग़लों के अधीन अवध और हैदराबाद दो प्रमुख प्रान्त थे जहाँ बुरहान—उल—मुल्क एवं निजाम—उल—मुल्क आसफजहा ने क्रमशः स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की। इन दोनों राज्यों के संस्थापकों का मुग़ल दरबार में काफी प्रभाव था लेकिन दरबार के षड़यंत्रों से तंग आकर इन्होंने अपने—अपने प्रान्तों को स्वायत शासन में परिवर्तित किया। दोनों राज्यों के शासकों ने अपने शासन को स्थिरता प्रदान करने के लिए आय के स्रोत भूराजस्व प्रशासन को व्यवस्थित करने पर सबसे अधिक ध्यान दिया। बंगाल की ही तर्ज पर भूराजस्व वसूली में ठेकेदारी प्रथा को अपनाया। वस्तुतः मुग़लों से अलग होकर बनने वाले स्वायत राज्यों ने लगभग उन्ही की व्यवस्था को अपनाया। ये सभी राज्य अपने क्षेत्रों में एक या दो आरंभिक शासकों के समय में ही व्यवस्थित रह सके उसके बाद इन राज्यों को उन्ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो बाद के मुगल शासकों ने की थी। अतः एक दो उदाहरण को छोड़, जैसे अवध के शासकों द्वारा लखनऊ में किया गया स्थापत्य कला का विकास, मुगल प्रान्तों से निर्मित राज्यों की कोई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ नहीं रहीं। ये राज्य एक तरह से अपने संस्थापकों की राजनैतिक महत्वकांक्षा की उपज थे। यह आकांक्षा मुगलों की कमजोरी से पैदा हुई थी।

बुरहान—उल—मुल्क

अलीवर्दी खाँ का दरबार

© BSTBPC WEB/NOT TO BE REPUBLISHED

राजपूत राज्य— पिछली इकाई में आपने राजपूतों के विषय में पढ़ा होगा। एक शक्तिशाली सामाजिक और राजनैतिक वर्ग के रूप में इनका उदय पूर्वमध्य काल में हुआ था। अध्याय चार में मुगलों और विभिन्न राजपूत राजवंशों के बीच सम्बन्ध के विषय में आप पढ़े होंगे। अकबर ने इस शक्तिशाली वर्ग के साथ स्थाई मित्रता करके मुगल साम्राज्य को स्थिरता प्रदान की थी। औरंगजेब के परवर्ती मुगल शासकों के काल में यह सम्बन्ध टुटने लगी। मुगलों के लगातार कमजोर होते जाने और उसके अधीन के प्रान्तों का स्वतंत्र राज्य में बदलने की प्रवृति ने राजपूतों में भी स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की लालसा पैदा की। प्रमुख राजपूत वंशों ने धीरे—धीरे अपने को मुगल सत्ता से मुक्त करना आरंभ किया साथ ही दिल्ली और आगरा के आस—पास के क्षेत्रों पर अपना प्रभाव भी बढ़ाने लगे। परन्तु इन राज्यों ने अपने यहाँ कोई नियंत्रित प्रंशासनिक व्यवस्था कायम नहीं की। पहले की तरह इन्होंने पुनः आपस में संघर्ष करना शुरू कर दिया। इस तरह ये अपने शक्ति और साधन को नष्ट करते रहे।

18वीं सदी का सबसे श्रेष्ठ राजपूत शासक आमेर (जयपुर) का सवाई जयसिंह (1681—1743) था। वह एक विख्यात खगोलशास्त्री था। इस क्षेत्र में उसकी गणना बहुत हद तक सही थी। उसने जाटों से प्राप्त क्षेत्र पर जयपुर शहर की स्थपना की। उसने आगरा, दिल्ली, जयपुर, मथुरा, और उज्जैन में पर्यवेक्षणषलाएँ बनवाई। यूनानी रेखागणितज्ञ यूक्लिड की पुस्तक "रेखागणित के तत्व" का सस्कृत में अनुवाद भी किया।

मुगलों से संघर्ष के बाद उदित होने वाले राज्य— अठारहवीं सदी में कुछ ऐसे राज्यों का अस्तित्व भी हम देखते हैं जो मुगलों से लगातार संघर्ष के बाद उदित हुऐ थे इनमें सबसे प्रमुख में मराठा राज्य सिक्ख और जाटों के राज्य थे।

मराठा राज्य— भारत में सत्रहवीं सदी में एक शक्तिशाली मराठा आंदोलन या विद्रोह शुरू हुआ जो अठारहवीं सदी की पहली चौथाई तक भारत की सबसे शक्तिशाली राजनैतिक इकाई बनकर उभरी। मराठों का उदय इस सदी की महत्वपूर्ण राजनैतिक—सामाजिक घटना थी जिसका नेतृत्व भारतीय इतिहास के एक रोमांचक व्यक्तित्व शिवाजी (1627—1680) ने किया। मुगल सम्राट औरंगजेब के साथ शिवाजी का संधर्ष मराठवाड़ा क्षेत्र के लोगों की राजनैतिक आकांक्षा का प्रतीक थी। यह मुगलों के विरुद्ध लोकप्रियता पर आधारित था। मुगलों के विरुद्ध जनता की भावनाओं का

© BSTBPC
WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

प्रतिनिधित्व शिवाजी कर रहे थे। दक्कन में मराठे एक प्रभावशाली भू–स्वामी या वतनदार सामाजिक वर्ग था। ये अहमदनगर और बीजापुर के राज्यों में सैनिक सेवा तथा प्रशासन में शामिल थे। आरंभ में मराठों के प्रभाव को देखकर मुगलों ने भी उनसे सर्मथन प्राप्त करने की कोशिश की, लेकिन शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले ने मुगलों की सत्ता को दक्कन में चुनौती देकर अहमदनगर राज्य में अपना प्रभाव काफी बढ़ा लिया। आगे शाहजी, बीजापुर राज्य की सेवा में चला गया जहाँ उसने अपने लिए एक जागीर का निर्माण किया। पूणा और उसके आस–पास के क्षेत्र पर भी उसने अपना प्रभाव स्थापित किया। वस्तुतः मराठे दक्कन में अहमदनगर और बीजापुर राज्य के अधीन रहकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के प्रति सचेत थे। शिवाजी ने उन्हें संगठित कर स्वतंत्र राज्य की आकांक्षा उनमें पैदा की। इस काम में उन्हें मराठों के बड़े जमींदारों, देशमुखों के विरोध का सबसे पहले सामना करना पड़ा, क्योंकि वे स्वतंत्र मराठा राज्य की जगह बीजापुर या अहमदनगर राज्य के जमींदार ही रहना चाह रहे थे। वे अपनी जागीर में काफी स्वायत्त थे। शिवाजी बिना उनके समर्थन के स्वतंत्र मराठा राज्य की स्थापना नहीं कर सकते थे।

शिवाजी का आरंभिक जीवन— शिवाजी का जन्म 1627 ई0 में शाहजी भोंसले के घर हुआ। शिवाजी का आरंभिक जीवन माता जीजाबाई और अभिभावक दादाजी कोंणदेव के संरक्षण में गुजरा वह अपनी छोटी जागीर को सैनिक शक्ति द्वारा बढ़ाना चाहता था। इसके तहत अठारह वर्ष की उम्र में ही पूणा के निकट रायगढ़, कोंकण तथा तोरण के किलों पर कब्जा करके अपनी राजनैतिक महत्वकांक्षा का परिचय दिया। उस समय दक्कन में मुगल बीजापुर राज्य पर अपना नियंत्रण बढ़ा रहे थे। शिवाजी ने इन दोनों राज्यों के बीच हो रही

शिवाजी

©BSEB NOT TO BE PUBLISHED

इस लड़ाई का फायदा उठाया। उसने अपनी छापामार लड़ाई शैली द्वारा बीजापुर के क्षेत्रों पर लगातार आक्रमण कर अपने प्रभाव को बढ़ाया।

औरंगजेब जब बादशाह बना तो उसने दक्कन में शिवाजी की शक्ति को, जो काफी बढ़ चुकी थी, तोड़ने की कोशिश की। उसने शाईस्ता खाँ को शिवाजी के विरुद्ध सैनिक अभियान का आदेश दिया लेकिन इसमें उसे सफलता नहीं मिली। शिवाजी द्वारा शाईस्ता खाँ के खेमे पर किये गए अचानक हमले में वह बाल–बाल बचा। इसके बाद औरंगजेब ने आमेर के शासक जयसिंह के नेतृत्व में एक बड़ा सैनिक अभियान शिवाजी के विरुद्ध किया। इसमें वह सफल रहा। शिवाजी ने अपने द्वारा जीते गए अधिकांश किले मुगलों को सौंप दिया, तथा मुगल मनसबदार बनने के लिए भी तैयार हो गया। परन्तु मुगल दरबार में औरंगजेब के द्वारा उसके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किए जाने के कारण मुगलों के साथ इसका संबंध बिल्कुल खराब हो गया।

1670 से शिवाजी ने मुगल और बीजापुर के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष शुरू किया और उसने अपने द्वारा पहले जीते गये सभी किले वापस प्राप्त किया तथा बीजापुर के कई क्षेत्रों पर भी कब्जा जमाया। दक्कन में मुगलों के व्यापारिक, नगर और बंदरगाह सुरत पर हमला कर बड़ी मात्रा में धन भी प्राप्त किया। चूँकि मुगल इस समय उत्तर–पश्चिम भारत में अफगान विद्रोहियों से उलझे थे इसलिए दक्कन में हो रहे इन घटनाओं पर ध्यान नहीं दे पाए। शिवाजी ने इन सैनिक प्रयासों से प्राप्त क्षेत्र का अपने आप को स्वतंत्र शासक घोषित किया। उसने रायगढ़ के किले में एक स्वतंत्र राजा के रूप में विधिवत राज्याभिषेक करवाया। इस तरह वह एक जागीरदार से स्वतंत्र शासक के रूप में दक्कन में अपने को स्थापित किया।

शिवाजी के राज्याभिषेक का महत्व और उसे प्राप्त जनसमर्थन– शिवाजी ने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर एक ही साथ कई राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया। अब उसका परिवार सम्पूर्ण मराठा क्षेत्र में सबसे प्रतिष्ठित हो गया। इस आधार पर उसने परम्परागत खानदानी मराठा परिवारों में शादी की। इससे उसके राजनैतिक शक्ति में वृद्धि हुई। अब वह एक विद्रोही से राजा की हैसियत में आकर दक्कन के सुल्तानों के समक्ष अपने को खड़ा किया।

BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

शिवाजी को कोली, कुनवी एवं अन्य निम्न सामाजिक समुदायों का समर्थन बड़े पैमाने पर प्राप्त हुआ था। उस समुदाय ने समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने एवं भूमि पर अपने अधिकार को स्थाई बनाने के उद्देश्य से शिवाजी का समर्थन किया। उस क्षेत्र के अन्य लोगों का समर्थन भी उसे इसलिए मिला क्योंकि मुगलों को वे लोग बाहरी समझते थे। उन्हें राजा मानने के लिए तैयार नहीं थे, तथा किसी प्रकार के कर को देने के लिए भी तैयार नहीं थे। मुगलों द्वारा बीजापुर और अहमदनगर राज्यों के साथ अपनाई गई अपमानजनक नीति से भी वे मुगलों का विरोध कर रहे थे। इस स्थिति में शिवाजी ने जब मुगल शासन का विरोध करना आंरभ किया तो स्वाभाविक ढंग से लोगों का समर्थन उन्हें बड़े पैमाने पर मिला। मराठों में कृषक समुदाय (कोली,कुनवी) एवं दलित वर्ग को एक साथ मजबूत सामाजिक गठबंधन में परिवर्तित करने का प्रयास भी शिवाजी ने किया। इसलिए यह कहा जाता है कि उसका राज्य दक्कन में मुगल विरोध की जनआकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रहा था। उसका राज्य जनभावनाओं और लोकप्रियता पर आधारित था।

शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था– शिवाजी ने अपने राज्य में जो व्यवस्था अपनाई वह उस क्षेत्र के राज्यों के अनुरूप ही थी। उसके प्रशासन का केन्द्र राजा था। उसको सहयोग देने के लिए आठ मंत्रियों का एक समूह था। इन्हें अष्टप्रधान कहते हैं।

1) **पेशवा–** प्रधानमंत्री प्रशासन और अर्थविभाग का प्रमुख–राजा के बाद सबसे शक्तिशाली अधिकारी जो लोकहित को ध्यान में रखता था।

2) **सर–ए–नौबत–** सेनापति–सेना की नियुक्ति, घोड़ा और अन्य सैनिक साजो समान की देखरेख करना।

3) **मजुमदार–** लेखाकार–इसका काम राज्य के आय–व्यय से जुड़े मामलों का लेखा तैया करना।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

4) **वाके नवीस–** गृह एवं गुप्तचर विभाग–राज्य के विरुद्ध होने वाली सभी गतिविधियों का ये विवरण रखता था।

5) **सुरू नवीस–** राजा को पत्र व्यवहार में मदद करने वाला–राजा अपने अधिकारियों के साथ संपर्क इसके माध्यम से रखता था।

6) **दबीर–** विदेश मामलों का प्रभारी–पड़ोसी राज्यों से संबंध बनाने में राजा को सलाह देता था।

7) **पंडित राव–** धार्मिक मामलों का प्रभारी–विद्वान एवं अन्य धार्मिक कामों के लिए मिलने वाला अनुदान का यह विवरण रखता था।

8) **न्यायाधीष शास्त्री–** हिन्दु न्याय प्रणाली की व्याख्या करने वाला

शिवाजी ने भूराजस्व में प्रमुख नीतियों को अपनाया और जमीन का नए ढंग से सर्वेक्षण कराया तथा करों का निर्धारण उसी के अनुरूप किया। वंशानुगत जमींदारों को नियंत्रित किया ताकि आय का स्रोत बना रहे। उसने अपने क्षेत्र के बाहर पड़ोसी राजाओं पर चौथ और सरदेशमुखी नामक दो भूराजस्व कर लगाए। उसके द्वारा बड़े जमींदारों या देशमुखों की शक्ति को तोड़ने की कोशिश अपने राजस्व प्रशासन में किया। इससे उसके अधिकार क्षेत्र में काश्तकारी जमीन का विस्तार हुआ। इस नीति से छोटे और मंझोले किसान तथा जमीन मालिकों का उन्हें समर्थन मिला। उसने सैन्य प्रशासन को व्यवस्थित किया। उसे नकद वेतन का प्रावधान हुआ। इस प्रकार शिवाजी ने अपने राज्य क्षेत्र में जो प्रयास किया उसका समर्थन छोटे लोगों ने व्यापक ढंग से किया।

> चौथ– मराठों द्वारा पड़ोसी राज्य क्षेत्रों पर हमला नहीं किये जाने के बदले लिया गया कर जो उपज का 25 प्रतिशत था।

> सरदेशमुखी– मराठों के बड़े जमींदार परिवारों, सरदेशमुखों के द्वारा लोगों के हितों की रक्षा के बदले उनसे लिया गया कर यह उपज का 9 से 10 प्रतिशत होता था।

पेशवाओं के अधीन मराठा शक्ति का विकास–

शिवाजी के मरने (1680 ई0) के बाद औरंगजेब जब तक जीवित रहा मराठा क्षेत्र पर

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

मुगलों का प्रभाव बना रहा। परन्तु 1707 के बाद शिवाजी के राज्य क्षेत्र पर चितपावन ब्राह्मणों के एक परिवार का प्रभाव स्थापित हुआ। शिवाजी के उत्तराधिकारियों द्वारा उसे पेशवा का पद प्रदान किया गया। उसने पुणा को मराठा राज्य का केन्द्र बनाया। पेशवाओं ने मराठों के नेतृत्व में सफल सैन्य, संगठन का विकास किया जिसके बल पर अपने राज्य का विस्तार बहुत अधिक क्षेत्रों तक कर लिया। मुगलों के कई परवर्ती शासक पेशवाओं के प्रभाव में ही कार्य करने को बाध्य हुए। पेशवा ने सम्पूर्ण मराठे राज्य को पाँच परिवारों में अलग–अलग विभाजित कर शासन की जिम्मेवारी सौंप दी। इस विभाजन का आधार चौथ और सरदेशमुखी की कुशल वसूली थी। पूणा के आस–पास का इलाका पेशवाओं के अधीन, ग्वालियर का इलाका सिंधिया के पास, इंदौर का इलाका होल्कर के पास, विदर्भ का इलाका गायकवाड के पास, तो नागपुर का इलाका भोंसले के अधिकार में रखा गया। इन सबों का सैद्धान्तिक प्रमुख पेशवा होता था। इसे मिलाकर मराठा परिसंघ कहा जाता था। मराठों की इस व्यवस्था ने पेशवा के अधीन उसे भारत की सबसे शक्तिशाली राज्य बना दिया। परन्तु उत्तरपश्चिम भारत में अपनी राजनैतिक महात्वकांक्षा को पुरा करने के लिए अफगान सरदार अहमदशाह अबदाली के साथ 1761 ई॰ में होने वाली पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठे की हार के बाद उसकी शक्ति बहुत कमजोर हुई, इसने मराठों के उत्कर्ष पर विराम लगा दिया।

जाट राज्य– मराठों के समान ही जाट नामक एक कृषक सामाजिक समूह ने सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी में मुगलों से संघर्ष के बाद अपना स्वायत राज्य कायम किया जिसका केन्द्र पश्चिम राजस्थान था। औरंगजेब के विरुद्ध सबसे शक्तिशाली और प्रथम कृषक विद्रोह इन्ही लोगों का था। इस वर्ग में अधिकांश काश्तकार थे, कुछ ही जमींदार। इनके बीच भाईचारे और न्याय की मजबूत भावना के कारण आपस में

©BSEB WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

जुड़ाव था। वैसे तो जाटों का विद्रोह जमींदारों के नेतृत्व में होने वाला कृषक विद्रोह था लेकिन इसी आधार पर 1680 तक इनका प्रभाव दिल्ली और आगरा के क्षेत्रों में स्थापित हुआ। इस प्रभाव का परिणाम था, भरतपुर में चूड़ामन और बदन सिंह के नेतृत्व में स्थापित जाट राज्य है। इसका पूर्ण विकास सूरजमल (1756–1763 ई0) के नेतृत्व में हुआ।

सिक्ख राज्य– पिछले अध्याय में आपने देखा होगा कि पन्द्रहवीं शताब्दी में सिक्ख धर्म को गुरु नानक ने स्थापित किया जो आरंभ में जाट किसानों और छोटी जातियों के बीच फैला। सत्रहवीं शताब्दी से सिक्ख एक राजनैतिक समुदाय के रूप में भी अपने–आप को संगठित करने लगे। अपने आखिरी गुरु, गुरु गोविन्द सिंह (1666-1708) के नेतृत्व में सिक्खों ने अपने को धार्मिक और राजनैतिक दोनों रूपों में संगठित करने का प्रयास किया। गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद गुरु की परम्परा खत्म हो गई। सिक्खों का नेतृत्व उनके विश्वासी शिष्य बंदा सिंह या बंदा बहादुर के हाथ में आया। उसने मुगलों के साथ आठ साल तक संघर्ष किया लेकिन राज्य निर्माण में वह सफल नहीं हो सका। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के कारण सिक्खों के प्रभाव वाले क्षेत्र पंजाब के प्रशासन में अव्यवस्था आई। अब्दाली के वापस लौटने पर सिक्खों ने पंजाब क्षेत्र मे राजनैतिक रिक्तता को भरना आरंभ किया। उन्होंने पहले अपने को जत्थों में फिर मिस्लों में संगठित किया। इस तरह के 12 मिस्ल या संघ थे जो पंजाब के विभिन्न भागों में प्रभावशाली थे। ये मिस्ल समानता के आधार पर एक दूसरे को सहयोग करते थे। इसी तरह के एक संघ के प्रमुख रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने उन्नीसवीं शताब्दी में एक शक्तिशाली राज्य के रूप में अपने को परिवर्तित किया।

चित्र : गुरु गाविन्द सिंह

क्षेत्रीय राज्यों के उदय का परिणाम तथा राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि निर्माण में भूमिका :–

मुगल साम्राज्य के कमजोर होने के बाद अठारहवीं सदी में कई नए स्वतंत्र क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। यह भारत में राजनैतिक और प्रशासनिक बिखराव का प्रतीक था। लोगों के समक्ष कई राज्य उभर कर सामने आ गये ये सभी आपस में अपने राज्य को बढ़ाने एवं दूसरों से शक्तिशाली बनाने के लिए आपस में लड़ते रहते थे। इन्होंने अपने राज्य का खर्च चलाने के लिए भू–राजस्व प्रशासन में ठेकेदारी प्रणाली शुरू की। चूँकि इनका राज्य क्षेत्र छोटा था। उससे आमदनी इनके खर्च के अनुरूप प्राप्त नहीं होती थी। इसलिए भू–राजस्व वसूली में इन्होंने इस विधि को अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप किसानों का शोषण और अधिक बढ़ गया। राजनैतिक अशांति के इस वातावरण में व्यापार, वाणिजय, शिल्प एवं कृषि का विकास आशा अनुरूप नहीं रहा। इस समय का शासक वर्ग आपसी लड़ाई और ऐश–मौज के जीवन में अपना पैसा खर्च कर रहे थे। भारत और विश्व स्तर पर राजनैतिक परिवर्तनों से वे बेखबर थे। भारत में उस समय व्यापारी के रूप में मौजूद अंग्रेजों के वास्तविक उद्देश्यों को वे नहीं समझ सके।

राजनैतिक बिखराव के इस दौर में अंग्रेजों ने धीरे–धीरे अपने को एक राजनैतिक शक्ति के रूप में यहाँ स्थापित करना शुरू किया। क्षेत्रीय राज्यों की जनता और शासक की भावना केवल अपने क्षेत्र से जुड़ी थी, इसलिए अंग्रेजों की बढ़त को वे रोक नहीं सके। जब तक अंग्रेजों के वास्तविक उद्देश्य को वे जान पाते, उसने भारत को अपना गुलाम बना लिया। सभी क्षेत्रीय राज्य उसके अधीन हो गये। यहाँ से भारत में क्षेत्रीयता की भावना कमजोर होने लगी और कई स्तरों पर एक सामान्य दुश्मन (अंग्रेज) का विरोध होने लगा। 1857 का विद्रोह इस विरोध का एक एकीकृत रूप था। यद्यपि उसके कारण अलग थे फिर भी इसमें शामिल लोगों का एक सामान्य लक्ष्य था अंग्रेजी सरकार को खदेड़ना।

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

अभ्यास

आओ याद करें :–

(i) मुगलों के उत्तराधिकारी राज्य में कौन राज्य आता है।

(क) सिक्ख (ख) जाट

(ग) मराठा (घ) अवध

(ii) बंगाल में स्वायत राज्य की स्थापना किसने की

(क) मुर्शिद कुली खाँ (ख) शुजाउद्दीन

(ग) बुरहान–उल–मुल्क (घ) शुजाउद्दौला

(iii) सिक्खों के एक शक्तिशाली राजनैतिक और सैनिक शक्ति के रूप में किसने परिवर्तित किया–

(क) गुरुनानक (ख) गुरु तेगबहादुर

(ग) गुरु अर्जुनदेव (घ) गुरु गोविन्द सिंह

(iv) शिवाजी ने किस वर्ष स्वतंत्र राज्य की स्थापना की

(क) 1665 (ख) 1680

(ग) 1674 (घ) 1660

(v) मराठा परिसंघ का प्रमुख कौन था ?

(क) पेशवा (ख) भोंसले

(ग) सिंधिया (घ) गायकवाड

निम्नलिखित में मेल बैठाएँ :–

© BSTBPC WEBCOPY, NOT TO BE PUBLISHED

(i)	ठेकेदारी प्रथा	–	मराठा
(ii)	सरदेशमुखी	–	औरंगजेब का निधन
(iii)	निजाम–उल–मुल्क	–	जाट
(iv)	सूरजमल	–	हैदराबाद
(v)	1707 ई॰	–	भू राजस्व प्रशासन

आइए विचार करें :–

(i) अवध और बंगाल के नवाबों ने जागीरदारी प्रथा को हटाने की कोशिश क्यों नहीं किया?

(ii) शिवाजी ने कैसी प्रशासनिक व्यवस्था अपने राज्य में कायम की?

(iii) पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा राज्य का विस्तार क्यों हुआ?

(iv) मुगल सत्ता के कमजोर होने का क्या प्रभाव भारतीय इतिहास पर हुआ?

(v) अठारहवीं शताब्दी में उदित होने वाले राज्यों के बीच क्या समानताएँ थीं?

आइए करके देखे :–

(i) शिवाजी और औरंगजेब के संबंधों में शिवाजी के विषय में प्रचलित कथाओं की चर्चा वर्ग में अपने साथियों से करें।

अथवा

शिवाजी के विषय में आम लोगों के बीच कैसी कथा प्रचलित है।

(ii) गुरु गाविन्द सिंह की मृत्यु से जुड़ी कथा का पता लगाओ–

WEBCOPY, © BSTBPC, NOT TO BE PUBLISHED